CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8-4

अखण्ड ज्यो

वादयात् ।

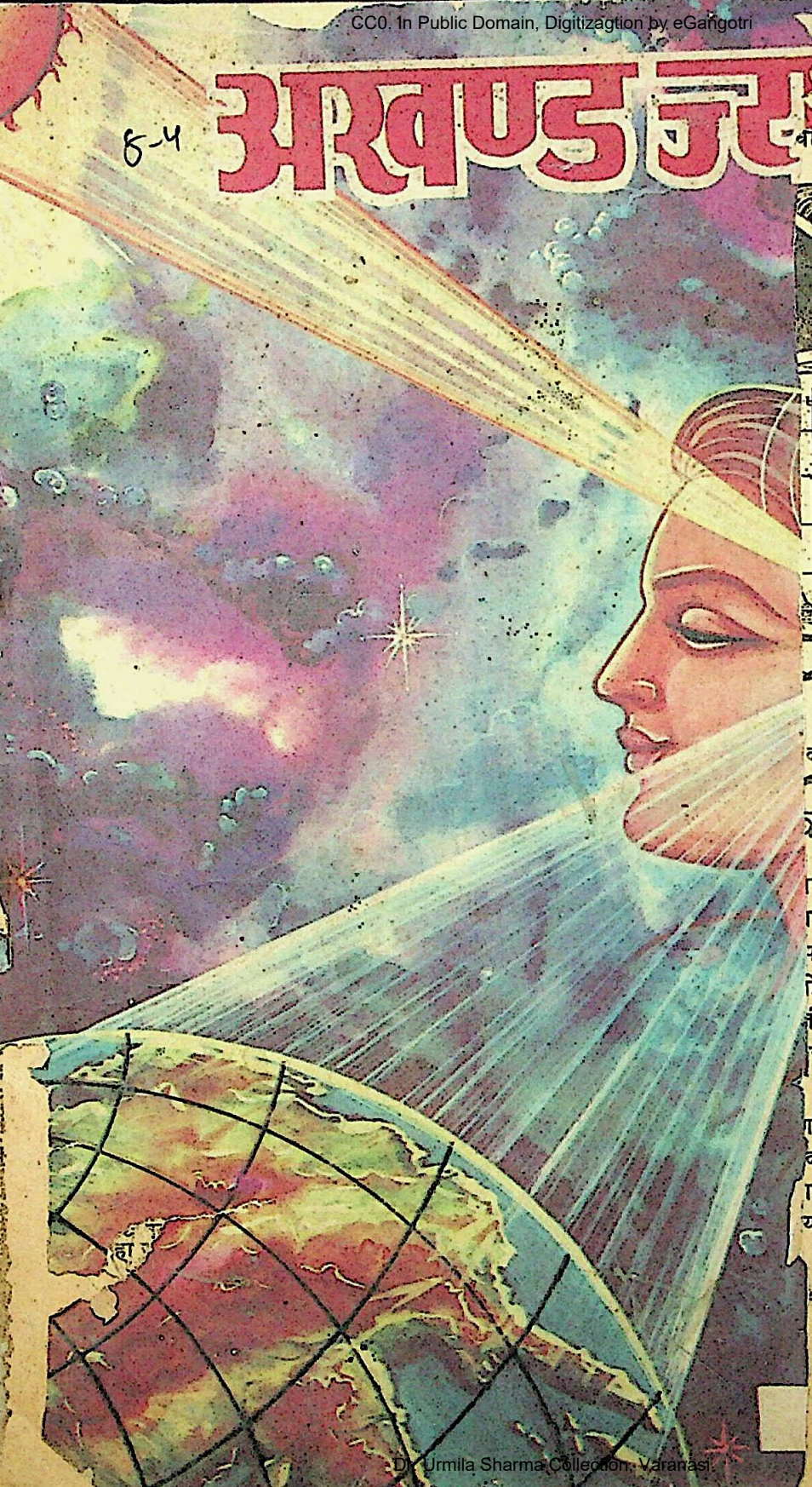

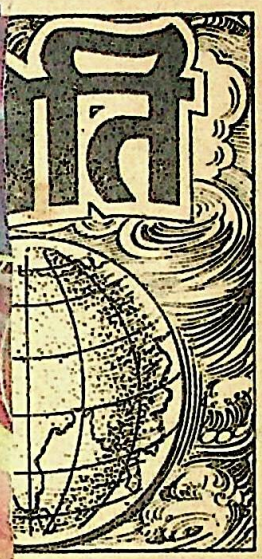

वार्षिक चन्दा १२)

दस वर्ष का चन्दा १००)

रण *

रा अपना सके, तो इतने
में पूरा कर सकती है।
प्रयोग करने के उपरान्त
ोग दूसरी बात है; पर
ीं। पतन और पराभव
कर स्वयं ही निमन्त्रित

। पतन का कारण है,
दोनों मार्ग हर किसी के
है और मनुष्य अपने
य एवं सार्थक सिद्ध कर

र्य के साथ हुआ है। यह
की राह पर चले और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पढ़ें और पायें

१. उत्थान या पतन का स्वेच्छा-वरण १
२. आशक्ति से निवृत्ति २
३. सच्चिदानन्द स्वरूप—अन्तरात्मा ३
४. सृष्टि के स्वरूप में झाँकती अदृश्य सत्ता ५
५. प्रकृति परिवार के प्रत्येक घटक में प्रचुर सामर्थ्य ८
६. वरदायी अभिशाप ११
७. संस्कार भी चेतना के साथ चलते हैं १३
८. चेतना के विकास में परिवेश का महत्व १६
९. सान्निध्य की सार्थकता अनुशासन में १९
१०. शत्रुता जब हार गयी २२
११. प्रकृति स्वयं आपकी चिन्ता करती है २६
१२. धर्म का अन्धविश्वासों से क्या सम्बन्ध २९
१३. स्वतन्त्र चिन्तन-औचित्य का अवलम्बन ३२
१४. दुष्टता के दमन की सृष्टि व्यवस्था ३३
१५. बुद्धिमान ही नहीं सम्वेदनशील भी बनें ३५
१६. सन् १९८२ में भूकम्पों की शृंखला ३७
१७. निराश होने का कोई कारण नहीं ४०
१८. सर्व समर्थ शक्ति के अवतरण का उद्घोष ४३
१९. स्वस्थ मन—स्वस्थ शरीर ४५
२०. निरर्थक दीखने वाली नाभि—दिव्य शक्तियों की गंगोत्री ४८
२१. जनाब की रामबाण चिकित्सा—योग साधना ४९
२२. अपनों से अपनी बात ५३

पता-अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

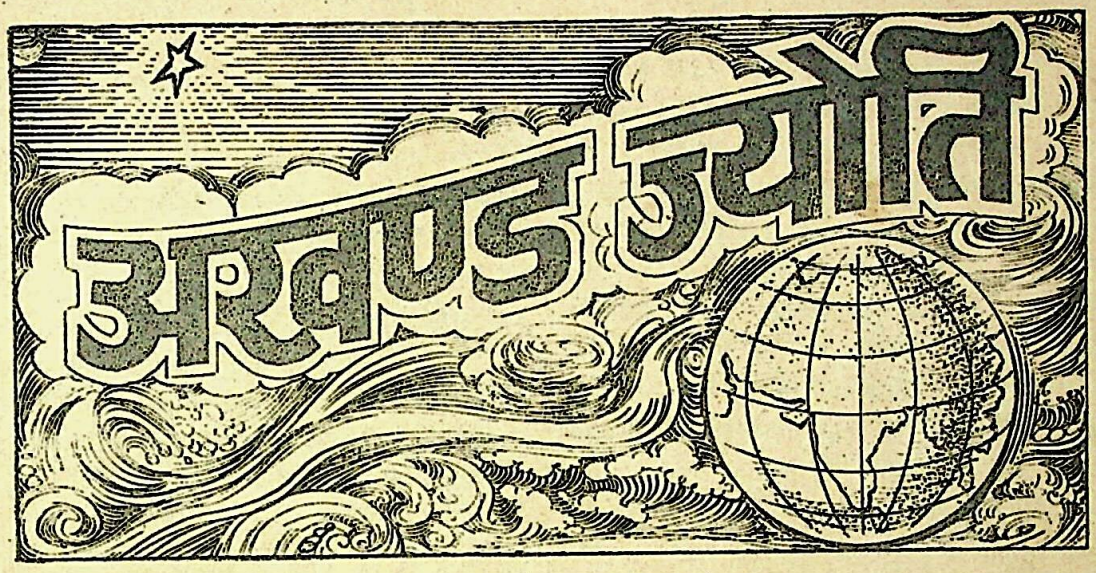

वर्ष ४५
अङ्क ५
मई १९८१
वार्षिक चन्दा १२)
दस वर्ष का चन्दा १००)

* उत्थान या पतन का स्वेच्छा-वरण *

मनुष्य सृष्टा की सर्वोत्कृष्ट संरचना है। उसकी सत्ता यदि सही दिशा-धारा अपना सके, तो इतने भर से वह आत्म-कल्याण का स्वार्थ और लोक-कल्याण का परमार्थ इसी जन्म में पूरा कर सकती है। मनुष्य इतना समर्थ है और आत्म निर्भर है कि अपनी क्षमताओं का उपयुक्त उपयोग करने के उपरान्त कहीं किसी के सामने हाथ न पसारे। पारस्परिक आदान-प्रदान और स्नेह-सहयोग दूसरी बात है; पर दरिद्रता और विपन्नता के गर्त में जा गिरने जैसी तो कोई बात हो ही नहीं सकती। पतन और पराभव विधाता ने उसके भाग्य में लिखा नहीं है। दुर्गति तो उसने अवांछनीयता अपनाकर स्वयं ही निमन्त्रित की है।

उत्थान का आधार है—सही दिशा निर्धारण और सज्जनता भरा आचरण। पतन का कारण है, अनुपयुक्त चिन्तन और उसकी पिनक में कुमार्ग का अनुसरण। उठने के गिरने के दोनों मार्ग हर किसी के लिए खुले पड़े हैं। इनमें से कोई किसी का भी स्वेच्छा पूर्वक वरण कर सकता है और मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस तथ्य की यथार्थता अपने उदाहरण से सर्वथा सत्य एवं सार्थक सिद्ध कर सकता है।

मानवी सत्ता का सृजन उत्कृष्टता की ओर अग्रसर हो सकने वाली सामर्थ्य के साथ हुआ है। यह उसका अपना चुनाव एवं रुझान है कि उत्थान के राजमार्ग को छोड़कर पतन की राह पर चले और दुर्भाग्य जैसी दुर्गति को भोगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसक्ति से निवृत्ति

तात ! अपनी विवशता मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ—विदूरथ ने गहन निःश्वास छोड़ते हुये बताना प्रारम्भ किया—जब भी अपरान्ह होता है मेरे अन्तःकरण में एक विलक्षण आकर्षण पैदा होता है। ऐसा प्रतीत होता है नीलाचल उपत्यिका का वह अश्वत्थ वृक्ष मुझे अपने पास बुला रहा है। उसके चिरचंचल पत्तों की ध्वनि, उसकी शीतल छाया और उसकी विशालता में न जाने ऐसा क्या है जो मुझे बारम्बार आकर्षित करता है और मैं अपने आपको रोक नहीं पाता। ओह आर्य ! मुझे क्षमा करें, गुरुकुल की मर्यादा का उल्लंघन मुझसे न हो इसका फिर प्रयास करूँगा। आज क्षमा करें।

यह क्षमा याचना आज नई नहीं थी, विदूरथ को प्रवेश लिये हुये लम्बी अवधि बीत गई। वह इस वर्ष आचार्य पद प्राप्त करने को है। उसका अध्ययन अत्यन्त प्रगाढ़ है। उसकी वाणी विनत और स्नेह-आश्रम के आबाल वृद्ध उस पर स्नेह रखते हैं। साधना के क्षेत्र में उसकी गति की सभी चर्चा करते हैं किन्तु उसे न जाने क्या मोह है जो वह दिन ढलने की प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही आश्रम का परित्याग कर देता है, दूर तक चला जाता है। अश्वत्थ वृक्ष तक पहुँचना, वहाँ घंटों ध्यान मग्न बैठे रहना उसका दैनन्दिन क्रम हो गया है। सान्ध्य आरती में उसने कभी भाग लिया हो यह देखने में नहीं आया। सहपाठी अनेक बार महर्षि कौटिल्य को इस तथ्य से अवगत करा चुके हैं। महर्षि की तीक्ष्ण दृष्टि विदूरथ पर रही है पर आज तक उन्होंने कुछ कहा नहीं। आज न जाने क्यों विदूरथ को उन्होंने सामुख्य के लिये बुला लिया है। विदूरथ ने अपनी बात अन्तःकरण से व्यक्त भी कर दी।

गुरुदेव ! इस बीच भावनाओं में खोये रहे। विदूरथ ने अपनी बात समाप्त की। महर्षि ने एक वत्सल दृष्टि विदूरथ पर डाली। विदूरथ ने दृष्टि नीचे झुकाई फिर सिर ऊपर उठाया किन्तु यह क्या ? विदूरथ ने देखा महर्षि के मुख मंडल पर एक श्वेत पिच्छिका झलक रही है, उसका एक-एक कण अनिर्वचनीय दिव्यता से ओत प्रोत। मानो आज विशाल नभमंडल अपने समस्त देदीप्यमान तारकों सहित महर्षि के आनन में उतर आया है। विदूरथ की चेतना विमोहित हो चली और निमिष मात्र में ही उस पिच्छिका में अन्तर्धान हो गई। अब वे एक दूसरे लोक में थे; स्वप्नवत् किन्तु समस्त ज्ञान और चेतना से परिपूर्ण।

विदूरथ ने देखा अपना वही परम प्रिय अश्वत्थ वृक्ष, उसकी वही चंचलता, तनिक सी बयारि बही और पत्ते नृत्य कर उठे, चैत्र मास की सन्ध्या जैसी शीतलता, नूतन पल्लवों की मोहकता सब कुछ परम मनोहर, परम मनोहर।

किन्तु विदूरथ ! की मानवी काया—नहीं नहीं यह तो एक शुक की देह है। शुक के रूप में विदूरथ अपनी प्रिया शुकी के साथ। विगत जीवन के सारे दृश्य एक एक कर उभर रहे हैं। ओह मैं विदूरथ—एक दिन इसी अश्वत्थ के कोटर में नन्हे से शुक के रूप में जन्मा, मेरे माता-पिता ने कितने स्नेह से मुझे दाने चुगाये थे, उड़ना सिखाया था और बड़ा होकर मैंने स्वयं एक सुन्दर शुकी को अपना जीवन साथी चुन लिया था बड़े आनन्द का जीवन, कितना उल्लास कितनी उन्मुक्तता।

किन्तु एक दिन मेरे सामने ही एक बाज ने प्रेयसी शुकी पर आक्रमण कर दिया, मैं असहाय, कुछ कर न सका—अपनी ही भार्या को अपनी आँखों के सामने गँवाकर जीवन का यथार्थ मेरे सम्मुख प्रकट हुआ। वियोग का वह एकाकी जीवन, कितनी पीड़ा से परिपूर्ण था। ऐसे में ही अपनी देह का एक दिन परित्याग कर उत्तर पाण्डेय के एक नगर में एक श्रेष्ठ परिवार में मैंने नया जीवन धारण किया। विदूरथ मेरा नाम है और अब मैं अविद्या के परिमार्जन के लिये महर्षि कौटिल्य के तपोवन में हूँ।

बालक विदूरथ की तन्द्रा टूट गई। अब वहाँ कोई पिच्छिका नहीं थी। महर्षि की तेजस्वी मुद्रा। अधरों में हल्की मुस्कान मानों वे कह रहे हों साधक ! तूने समझ लिया क्या, पिछले जन्मों के संस्कार कितने प्रचंड वेग[illegible] को आकर्षित करते और श्रेयस् में बाधा उत्पन्न करते हैं।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सच्चिदानन्द स्वरूप - अन्तरात्मा

परमात्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप कहा गया है। विराट का ही एक अंश होने से जीवात्मा भी उन्हीं गुणों से सुशोभित है। सत्, चित्, आनन्द ये तीनों मिलकर कारण शरीर का ढाँचा बनाते हैं। सत् अर्थात् शाश्वत, अजर, अमर और अविनाशी स्वरूप। चित् अर्थात् चेतना दिव्य गुणों से सुसज्जित, उच्च स्तरीय आदर्शों आस्थाओं से युक्त। आनन्द अर्थात् भाव संवेदनाओं, सरसता, मृदुलता से सिक्त अन्तःकरण। आशा, उत्साह, संतोष के परस्पर समन्वय पर आधारित जीवन क्रम। आत्मा का सहज स्वभाव है ऊँचा उठना, अपने विराट स्वरूप की स्वयं को प्रतिमूर्ति बनाने के लिए इन्हीं गुणों से स्वयं को समृद्ध करना तथा अंततः समस्त आवरणों को हटाते हुए अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करना। परिष्कृत जीवात्मा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आध्यात्मिक पुरुषार्थ करती है एवं जीव-ब्रह्म सम्मिलन से निसृत परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करती है।

इस आत्म गरिमा से अपरिचित मनुष्य भटकता है। यह विस्मृति अनेकानेक समस्याओं को जन्म देती है। इन्हें ही माया का आवरण, मनुष्य का विभ्रम कहा जा सकता है। ये ही रोग शोकों के रूप में अंततः बाहर प्रकट होते हैं।

सच्चिदानन्द का पहला चरण है सत्। 'सत्' मनुष्य को जीवन के क्षणभंगुर होने का बोध कराता है। हम अजर अमर अविकारी हैं। पंचतत्त्वों से बनी इस काया के बिखर जाने पर भी हमारी सत्ता बनी ही रहेगी। यह बोध बना रहे तो भटकाव से बचा रहा जा सकता है। पर कायिक इन्द्रियों की बनावट ही कुछ ऐसी है कि वह बहिर्जगत को देखती और जड़ पदार्थों के प्रति सहज ही आकर्षित हो जाती है। सत् की अनुभूति व्यक्ति को यह विचार करने पर विवश करती है कि यह शरीर मरणधर्मा है। परन्तु आत्मा कभी नष्ट नहीं होती है। वह तो एक सतत प्रवाह है। आत्मा का स्वास्थ्य ही मनुष्य की सारी सफलताओं का प्राण है। यह तभी संभव है, जब मानव अपने वर्तमान जीवन को श्रेष्ठ, उदार तथा उदात्त भावनाओं से युक्त करने का प्रयास करता है।

सत् में आस्था रखने वाला व्यक्ति सृष्टि को चलाने वाली बुद्धिमान, उद्देश्य पूर्ण व्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखता है। वह जानता है कि विधि-विधानों, नियमों के अनुरूप चलाने वाली इस सृष्टि की व्यवस्था में किसी तरह की अनुशासन हीनता, अनियंत्रण, अदूरदर्शिता का स्थान नहीं है। कर्मफल से पूर्णतः अवगत यह व्यक्ति अपनी समस्त गतिविधियों का निर्धारण सुघड़ता पूर्वक करता है। वह जानता है कि आत्मा कभी नहीं बदलती। बदलता तो यह चोला है। फिर उसके लिए व्यर्थ मोह क्यों करना अनावश्यक संग्रह एवं उपभोगों में स्वयं को लीन करना इस सृष्टि के मुकुटमणि मानव के लिए कतई शोभनीय नहीं है। ऐसा चिन्तन प्रखर होने पर स्वयं को ऊँचा उठा हुआ पाता है। आत्मिक प्रगति के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है।

आत्मा की दूसरी विशेषता है 'चित्'। उच्चस्तरीय आस्थाओं, मान्यताओं एवं आदर्शों से युक्त व्यक्ति 'चित' परायण कहलाता है। चित् अर्थात् स्वयं के विषय में उत्कृष्टता पूर्ण मान्यता, अपने लक्ष्य के प्रति चेतनता, सजगता। ये वे निष्ठाएँ हैं, जो मनुष्य की जीवनयात्रा की रूप रेखा बनाती हैं। देवत्व में आस्था, आदर्शवादी उत्कृष्टता में अटूट विश्वास, सुपर सत्ता के प्रति समर्पणभाव 'चित्' के परिष्कृत स्वरूप हैं।

'चित' एक गुण है जो परिष्कृत स्वरूप में व्यक्ति को महामानव बना देता है। पर जब यही विकृति की ओर अग्रसर हो जाता है, तो अनेकानेक समस्याओं, मानसिक असंतुलनों एवं शारीरिक संतापों को जन्म देता है। आदर्श-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वादिता से निष्ठा हटते ही पतन तेजी से होता है। दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण स्वयं के विषय में मान्यताएँ गरिमायुक्त नहीं रहतीं। श्रेष्ठ चिन्तन का अभाव एवं उत्कृष्टता के प्रति अनास्था अंततः उद्दण्डता को जन्म देती है। विकृत चिन्तन से सद्विचारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। सिद्धान्तों के प्रति, अपनी दिव्यताओं के प्रति अनास्था मनुष्य को एकांगी स्वार्थी एवं अहंकारी बनाती है।

आवेश तथा जल्दबाजी के कारण व्यक्ति को जो भौतिक दृष्टि से हानि होती है, वह अविज्ञात नहीं है। परन्तु वह व्यक्ति स्वयं इस तथ्य से अनजान बना रहता है कि यह उद्धत आचरण उलट कर उस पर ही हमला करेगा। मानसिक तनाव और उससे होने वाली समस्त मनोशारीरिक व्याधियाँ ऐसे व्यक्तियों को होती हैं; जो स्वयं उच्छृंखल हैं, उसके अंग, अवयव, ऊतक भी क्योंकर किसी का कहा मानेंगे। आवेश-क्रोध से होने वाला स्राव समस्त शरीर संस्थानों के परस्पर संतुलन को गड़बड़ा देता है। इसके विपरीत स्वयं की गरिमा व महत्ता में चित् की विशिष्टता में, आदर्शों के प्रति निष्ठा रखने वाला व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से तो संपन्न होता है ही, मानसिक संतुलन व समस्वरता तथा शरीरगत सुव्यवस्था भी उसकी एक बहुमूल्य अर्जित सम्पत्ति है?

सच्चिदानन्द आत्मा का तीसरा और अंतिम पक्ष है 'आनन्द' इसके बिना आत्मा की परिपूर्ण व्याख्या संभव नहीं। जीवात्मा का लक्ष्य ही आनन्द है। इसे परिष्कृत भाषा में कहा गया है "रसो वै सः"—वह परमात्मा रस से आनन्द से परिपूर्ण है। इस रस को प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्गों से साधक पुरुषार्थ करता है एवं संतोष का आनन्द लेता है। इस रस का अंतरंग पक्ष है भावसंवेदनाओं से लबालब अन्तःकरण। करुणा, दया, सेवा भावना, भक्तिभाव रस के परिष्कृत स्वरूप हैं। जब इनका विकास सहज स्वाभाविक रूप से होता है, तो ये व्यक्ति को भावनात्मक दृष्टि से ऊँचा उठाते हैं। ऐसे महामानव विश्व मानवता की सेवार्थ अपने जीवन की आहुति दे देते हैं। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला आनन्द क्षणिक है, ऐसी मान्यता रखने वाले ये महापुरुष अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग उच्च उद्देश्यों की ओर नियोजित करने में करते हैं।

चेतना पर काया, काम, क्रोध, लोभ, मोह-मत्सर के जो आवरण पड़े हैं, उनके कारण जीव इस उद्गम स्रोत तक नहीं पहुँच पाता। प्यास निरन्तर बनी रहती है। कस्तूरी अपनी नाभि में लिये हिरन जिस प्रकार सुगन्ध की खोज में चारों ओर मारा-मारा फिरता है, उसी प्रकार जीव आनन्द की खोज में विविध योजनाएँ बनाता, कल्पना करता एवं अथक प्रयत्न करता है। यह पुरुषार्थ असफल, असमाधान कारक ही होता है। अन्तःकरण की गहन परतों में छिपे आनन्द के स्रोत की खोज बाह्य जगत में चलने के कारण भटकाव, थकान, अशांति, निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता।

आनन्द की मिठास और भी गहन है। इसकी विकृति वासना, तृष्णा, अहंता के रूप में बाहर परिलक्षित होती है। आनन्द की प्रतिच्छाया होने के कारण वासना आकर्षक एवं लुभावनी लगती है। विषयों के सेवन में मन लगने लगता है तो व्यक्ति विलासी, प्रमादी, आलसी होता चला जाता है। जिह्वा का असंयम कामेन्द्रियों का उपभोग, संग्रहका लोभ अनेकानेक मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों को जन्म देता है।

विषयों के सेवन में जब इतनी तृप्ति और तुष्टि मनुष्य को मिलती है तो उसके मूल स्रोत में कितनी मिठास होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही हृदय पुलकित हो उठता है। भगवान रसमय है। इस रस को आत्म-सत्ता के रूप में ईश्वर ने मनुष्य को धरोहर बनाकर दिया है। यह रस भौतिक नहीं आत्मिक है। इसे अन्तःकरण के उल्लास, संतोष, शांति जैसी दिव्य संवेदनाओं के रूप में अनुभव किया जाता है। भक्तिरस की धाराएँ ऐसे ही अन्तःकरण में बहती हैं। ये ही कभी मीरा, कभी चैतन्य एवं कभी रामकृष्ण परमहंस जैसी विभूतियों के रूप में प्रकट होती हैं। सुपरसत्ता—परब्रह्म से मिलन संयोग की स्थिति ऐसी ही जागृति पर आती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अदृश्य सत्ता

एक व्यक्ति ने ताजमहल देखा। अनुपम कलाकृति को देखकर उसका मन पुलकित हो गया। ऐसी सुन्दर कृति उसने कभी नहीं देखी थी। उसके मन में तीन प्रकार के विचार उत्पन्न हुए। (१) यह कृति अपने आप बन गई (२) अकस्मात् बन कर तैयार हो गई (३) इसको किसी विचारशील मनुष्य ने बनाया है। सामान्यतया किसी भी व्यक्ति से पूछा जाय कि इन तीनों प्रकार के विचारों में कौन सही है? तो प्रत्येक का उत्तर होगा प्रथम दोनों निराधार तथा तृतीय सत्य है। प्रथम तथा द्वितीय के समर्थन करने वालों को विवेक रहित, मूर्ख कहा जायेगा और उनका उपहास किया जायेगा।

सृष्टि रचना को लेकर भी समय-समय पर इसी प्रकार के प्रश्न उठते रहे हैं? मानवकृत रचनाओं के सन्दर्भ में तो सबका ही एक मत होगा। किन्तु सृष्टि रचना के विषय में विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित है जो निराधार हैं। पर आश्चर्य यह है कि तथाकथित अपने को बुद्धिमान कहने वाले व्यक्ति इस प्रकार की निराधार मान्यताओं के प्रति दुराग्रह पूर्ण समर्थन करते देखे जाते हैं। सृष्टि के उद्भव के सन्दर्भ में प्रचलित मान्यताएँ निम्न हैं—

(१) सृष्टि अपने आप बन गई : अनादि काल से यह अपने आप बनती बिगड़ती चली आ रही है।

(२) सृष्टि अकस्मात बन गई।

(३) सृष्टि का कारण प्रकृति (नेचर) है।

(४) इसको बनाने वाली कोई समर्थ ज्ञानमय सत्ता है।

यथार्थ की जानकारी के लिए इन मान्यताओं की विवेचना आवश्यक है।

कारण सत्ता के बिना कार्य सम्भव नहीं. इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता चाहे वह नास्तिक हो अथवा आस्तिक। किन्तु देखा यह जाता है कि यह सिद्धान्त मानव कृत रचनाओं, क्रियाओं के लिए तो स्वीकार किया जाता है किन्तु सृष्टि के लिए नहीं। एक सुन्दर मकान को देखकर ध्यान सहज ही उन कारीगरों की ओर चला जाता है जिनके कला-कौशल मकान के भीतर झलकते दिखायी देते हैं। आकर्षक मूर्ति को देखकर कलाकार का भान होता है। मोटर, हवाई जहाज, रेल आदि में मानवी श्रम एवं बौद्धिक क्षमता के योगदान की बात स्वीकार की जाती है। वैज्ञानिक उपलब्धियों में वैज्ञानिकों की गहरी सूझ-बूझ एवं अथक श्रम का परिचय मिलता है। इन संरचनाओं को देखकर हर कोई अनुमान लगाता है कि इनको बनाने वाला कोई न कोई है?

विशाल सृष्टि एवं उसकी सुव्यवस्थित क्रिया प्रणाली देखकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या इसको बनाने एवं संचालन करने वाली कोई कारणभूत सत्ता है?

एक मान्यता यह है कि सृष्टि अपने आप बन गई। वैज्ञानिकों के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व एक सूक्ष्म द्रव्य आकाश में फैला था। सूर्य, चन्द्रमा किसी का भी अस्तित्व नहीं था। कुछ काल बाद यह द्रव्य केन्द्र स्थानों पर सघन हो गया। केन्द्रों में गति उत्पन्न हो गई। गति से प्रत्येक केन्द्र गोले में परिवर्तित होकर अपनी धुरी पर तेजी से घूमने लगा। तीव्र गति के कारण गोले के भाग टूट कर अलग होने लगे। इन अंशों से ग्रह, उपग्रह का निर्माण हुआ, जो बाद में एक निर्धारित कक्षा में घूमने लगे। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों का निर्माण आदि काल के विशाल गोलों से हुआ।

प्रकृति के परमाणुओं के गतिशील होने तथा गतिशील होकर सृष्टि निर्माण की बात यदि स्वीकार भी करली जाय तो भी समाधान इतने मात्र से नहीं हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता। परमाणुओं में गति कैसे उत्पन्न हो गई, इसका उत्तर विज्ञान के पास नहीं है। उपरोक्त कथन उसी प्रकार है जैसे मकान को देखकर कहा जाय कि मिट्टी के कणों में गति उत्पन्न हो गई। ये कण पानी के साथ मिलकर ईंटों में परिवर्तित हो गये। इन ईंटों को शान्त बैठे रहना अच्छा नहीं लगा, उनमें पुनः गति उत्पन्न हुई। सीमेन्ट, लोहे से समझौता किया। परस्पर एक-दूसरे के ऊपर सजते हुए चले गये। सीमेन्ट ने जोड़ने का कार्य आरम्भ कर दिया ? लोहे ने इस त्याग वृत्ति का अनुकरण किया तथा मकान के बोझ को सँभालने का उत्तरदायित्व वहन किया। जिसके फलस्वरूप मकान बनकर तैयार हो गया। मनुष्य द्वारा बनायी गई वस्तुओं के संदर्भ में इस प्रकार का यदि प्रतिपादन किया जाय तो उसे अविवेकपूर्ण कहा जायेगा। पर सृष्टि रचना के विषय में इस प्रकार का प्रतिपादन किया जाता है तो उसे क्या कहा जाय।

सृष्टि के अपने आप बनने बिगड़ने की मान्यता में एक तर्क यह दिया जाता है कि यह परमाणुओं का स्वभाव है किन्तु कोई भी स्वभाव क्रिया में परिणत तभी हो सकता है जब कि उसमें कोई गति देने वाला हो। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। चीनी का स्वभाव है मीठा होना,—नमक का नमकीन। आटा, पानी, घी का अपना अलग-अलग स्वभाव है। इन वस्तुओं को यदि एक स्थान पर रख दिया जाय और सोचा जाय कि ये वस्तुएँ अपने स्वभाव से प्रेरित होकर गतिशील हो जायेंगी। इस प्रकार मिष्ठान अथवा पकवान बनकर तैयार हो जायेगा। यह सर्वथा असम्भव है। वस्तुओं के अन्दर अपनी विशेषताएँ तो हैं किन्तु उनके स्वयं के अन्दर कोई प्रेरक शक्ति नहीं है जो गति दे सके। मिठाई तो तभी बनती है जब हलवाई एक निश्चित मात्रा में उन वस्तुओं को एक निश्चित क्रम से मिलाता है। प्रकृति के परमाणुओं में स्वभाव की विशेषता होते हुए भी अपने को निश्चित, आकार प्रकार में परिवर्तित कर सकने की असमर्थता है। उन्हें संयुक्त करने अभीष्ट आकार प्रदान करने में किसी समर्थ विचारशील चेतनसत्ता के हाथ होने की बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

सृष्टि रचना के सन्दर्भ में दूसरे प्रकार की मान्यता है कि यह अकस्मात् बन गई। इसके पूर्व कि इस मान्यता की विवेचना की जाय, अकस्मात् शब्द की व्याख्या करना कहीं अधिक आवश्यक है? इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक व्यक्ति बम्बई पहुँचा। वहाँ पर उसकी भेंट अपने पुराने मित्र से हुई, जो दिल्ली में रहता था। प्रचलित मान्यता इसी को अकस्मात की संज्ञा देती है। किन्तु गहराई में जाने का प्रयत्न करें तो स्पष्ट होगा कि आकस्मिक मिलन का निमित्त कारण दोनों की इच्छा शक्ति थी जिससे प्रेरित होकर वे बम्बई पहुँचे। स्पष्ट है कि कोई भी घटना अकस्मात नहीं घटित होती उसके पीछे कोई न कोई कारण होता है। तूफान अचानक आता है किन्तु उसकी भूमिका वायुमंडल में पहले ही बन जाती है। वर्षा होती है। लगता तो है कि यह आकस्मिक घटना है किन्तु इसके पूर्व बादलों का बनना, हवा का चलना आदि प्रक्रिया सम्पन्न होती है तब कहीं वर्षा होती दिखायी देती है। घटनाएँ तो विभिन्न क्रियाओं की शृंखला का परिणाम हैं। पहले सम्पन्न हुई क्रियाओं को न देख पाने के कारण ही कहा जाता है कि अमुक घटना अकस्मात् घटित हो गई।

सृष्टि रचना के विषय में अकस्मात् की मान्यता कुछ इसी प्रकार है। इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह होगा कि सृष्टि की विभिन्न घटनाएँ स्वतन्त्र तथा असम्बद्ध इच्छाशक्तियों द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित हैं; जो परस्पर मिलकर सृष्टि को बनाती हैं। एक शक्ति बादल बना रही है तो दूसरी नदी एवं समुद्र। तीसरी पहाड़ बनाने में संलग्न है। चौथी ग्रह-नक्षत्र। पाँचवीं हवा चलाने में व्यस्त है। इस क्रम में बढ़ते जायें तो असंख्यों प्रकार की रचनाओं के लिए असंख्यों तरह की शक्तियों की आवश्यकता होगी। इस पर विवेक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इच्छा शक्ति की बात विभिन्न प्रकार की शक्तियों में परोक्ष रूप से स्वीकार की गई है। इस प्रकार एक सृष्टि कर्ता की बात को स्वीकार न करके ऐसे प्रतिपादन द्वारा असंख्यों प्रकार के इच्छा शक्ति वाले ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृष्टि रचना में किसी समर्थ विचारशील सत्ता के अस्तित्व का समर्थन यह प्रतिपादन स्वयं करता है।

स्पष्ट है कि परमाणुओं के आकस्मिक संयोग से इतनी सुन्दर, व्यवस्थित सृष्टि का निर्माण सम्भव नहीं। इसे विज्ञान एवं विचार शीलता का अंध विश्वास ही कहा जाना चाहिए जिसमें सृष्टि के अकस्मात् सृजन की बात कही जाती है। यदि परमाणुओं के परस्पर उलट-फेर से सूर्य, चन्द्र, मंगल तथा अन्यान्य ग्रह, उपग्रह बन सकते हैं तो एक सामान्य मकान अपने आप बनकर तैयार क्यों नहीं हो जाता। समुद्र, नदी, पहाड़ बन सकते हैं तो एक कुआँ क्यों नहीं बन जाता। 'अकस्मात्' बनने की बात यदि सृष्टि के विषय में कही जाती है तो मानवकृत रचनाओं के लिए भी स्वीकार किया जाना चाहिए। किन्तु यह सर्वथा असम्भव है।

तीसरे प्रकार के समर्थकों का कहना है कि संसार का निर्माण स्वयं प्रकृति करती है? यह मान्यता उपरोक्त दोनों से भी अधिक अविवेक पूर्ण है। आकार-प्रकार की दृष्टि से प्रकृति की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। प्रकृति से अभिप्राय यहाँ सृष्टि नियम से माना जाय तो सृष्टि नियम को सृष्टि कर्ता मानना बहुत बड़ी भूल होगी। पाश्चात्य जगत के प्रसिद्ध विचारक फिलन्ट अपनी पुस्तक 'फिलन्ट्स थ्रिज्म' में लिखते हैं कि, "सृष्टि रचना एवं उसकी सुव्यवस्थित क्रिया प्रणाली का कारण सृष्टि-नियम बताना, वस्तुतः टालमटोल करना है। नियम व्यवस्था बिना किसी चेतन सत्ता के सम्भव नहीं है।

प्रो० हवैविल का कहना है कि, "किन्हीं घटनाओं का सम्बन्ध बताने वाले, उन पर शासन करने वाले नियम यह बताते हैं कि कोई व्यवस्थापक, ज्ञानमय सत्ता है। नियम प्रबन्ध के कारण नहीं हो सकते वरन् इस बात के सूचक हैं कि कोई नियामक सत्ता है।

उपरोक्त मान्यताओं के विवेचन से स्पष्ट है कि सृष्टि को बनाने वाली कोई चेतन सत्ता है। जो विचारशील ही नहीं शक्ति सम्पन्न भी है। चौथी प्रकार की मान्यता की पुष्टि इन तीनों की विवेचना द्वारा होती है।

हमारा अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि उसकी आदि कारण सत्ता भी है? जीवन है तो उसका स्रोत भी है। चेतना है तो उसका आदि स्थल भी है। सृष्टि स्वयं प्रमाण है कि सृष्टि कर्ता है। जड़-चेतन का सृजन, अभिवर्धन एवं परिवर्तन की प्रक्रिया सम्पन्न करने वाली शक्ति उद्गम रहित नहीं हो सकती। जो सबका कारण, जीवन शक्ति, ज्ञान, आनन्द का आदि स्रोत है वही परमात्मा है। उसी को विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं?

उस परम सत्ता को समझ न सकने के कारण ही इस प्रकार की अविवेकपूर्ण मान्यताएँ बनायी जाती हैं। जिन्होंने अन्वेषण किया, साधना में प्रवृत्त हुए उन्होंने न केवल सृष्टि की आदि कारण सत्ता को जाना वरन् उसके सानिध्य का लाभ भी उठाया। दिव्य आलिंगन का अनुभव किया। उस आनन्द की मस्ती में कह उठे.... "भौतिक जगत के सारे सुख उस आनन्द के समक्ष कुछ भी नहीं हैं।"

संत, महात्मा, ऋषि, महर्षियों के ज्वलंत इतिहास इस बात के प्रमाण हैं। जिनके जीवन की पवित्रता, व्यक्तित्व की श्रेष्ठता सहज ही जन-सामान्य को आकर्षित कर लेती है; उनके आत्मबल की सम्पन्नता सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को प्रेरणा ही नहीं देती वरन् उनकी गतिविधियों में भी आमूल-चूल परिवर्तन करके श्रेष्ठता की ओर बढ़ने के लिए बाध्य करती है। उसी शक्ति की छोटी चिन्गारी अपनी अन्तरात्मा में जलती देखी। दिव्य सत्ता को सम्पूर्ण चराचर में ओत-प्रोत देखा तथा सृष्टि की सुव्यवस्था में उसका प्रवाह अनुभव किया। उन महान् आत्माओं के पद-चिह्नों पर चला जा सके तो सृष्टि की आदि कारण सत्ता को जाना ही नहीं अनुभव भी किया जा सकता है। जिसको अनुभव करने के उपरान्त किसी प्रकार की कामना शेष नहीं रह जाती है। यह जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। मानव जीवन का परम लक्ष्य यही है।

(पृष्ठ २ का शेष)

विदूरथ की आँखें भर आईं, हृदय उमड़ उठा। वे कुछ बोले नहीं, गुरुदेव को प्रणाम किया और सान्त्य प्रार्थना के लिये चल पड़े। आज उन्हें परम संतोष था, योगियों जैसा आत्म सन्तोष! मन को बार-बार विपरीत दिशा में चलाने का तप क्यों करना पड़ता है यह उन्होंने आज जान लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकृति परिवार के प्रत्येक घटक में प्रचुर सामर्थ्य

प्रकृति के आँगन में विशालकाय जीवों की अथवा बहुत छोटे और आँखों से न दिखाई देने वाले प्राणियों की भी भरमार है। शरीर में बहुत छोटे और बहुत बड़े का अन्तर होते हुए भी सभी प्राणी अपना जीवन निर्वाह समान रूप से व्यतीत करते हैं। इसके लिए प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को उसकी आवश्यकता और स्थिति के अनुसार पर्याप्त सामर्थ्य दी है। हाथी, ऊँट, गैण्डा, जिराफ, चिम्पैंजी, गुरिल्ला, सिंह, व्याघ्र, व्हेल, शार्क जैसे समर्थ और बड़े शरीर वाले प्राणियों की गतिविधियों तथा उनकी सामर्थ्यों के सम्बन्ध में हमें बहुत कुछ जानकारी उपलब्ध है। मनुष्य इन सबमें सर्वाधिक बुद्धिमान समझा जाता है। उसकी बुद्धि शीलता के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना खोजा और कहा गया है। किन्तु इसी आधार पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि प्रकृति ने ऐसी विशेषताएँ बड़ी आकृति वाले प्राणियों को ही दी हैं। छोटे जीवों में चींटी, दीमक और मधुमक्खियों के जैसे कीड़े मकोड़ों की गतिविधियों को यदि गंभीरता पूर्वक देखा जाए तो आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है और मानना पड़ता है कि उन्हें अपने जीवन क्षेत्र की परिधि में प्रकृति ने मनुष्य से भी अधिक बुद्धिमत्ता और कुशलता प्रदान की है।

जिन प्राणियों के सम्बन्ध में समझा जाता है कि उनमें कोई बुद्धि नहीं होती, वास्तव में ऐसा होता नहीं है। वे बुद्धिमान हैं या निर्बुद्धि इसका विश्लेषण निर्धारण हम अपनी क्षमता के स्तर को मान दंड बना कर करते है और उस समय यह भूल जाते हैं कि सब प्राणियों का जीवन क्रम तथा उनका कार्यकलाप एक जैसा नहीं है। प्रत्येक प्राणी को उसकी आवश्यकता के अनुसार प्रकृति ने पर्याप्त कुशलता और सफलता प्राप्त करने योग्य क्षमता दी है। इस तरह से वे न तो तुच्छ ठहरते हैं और न ही मूर्ख तथा अशक्त। मछलियों के समाज में कदाचित हमें रहना पड़े और जल में निवास करना पड़े तो निस्संदेह मछलियाँ हमें सर्वथा अशक्त एवं शोचनीय दुर्दशाग्रस्त स्थिति में पड़ा प्राणी दिखाई देंगी। यही बात मक्खियों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। मक्खियाँ ही क्यों कोई भी प्राणी या जीवजन्तु हमें अपनी तुलना में दीन हीन ही प्रतीत होगा।

बड़े और स्थूल प्राणियों में ऐसे जीव जन्तुओं का अध्ययन किया जाए जिन्हें विकसित कहा जा सकने योग्य मस्तिष्क तथा संवेदना सूचक इन्द्रिय समूह प्राप्त नहीं है, इतनी अभावग्रस्तता के बीच भी उन्हें चेतना का अपना अद्भुत स्तर उपलब्ध है और धंधे वृद्धि से लेकर जीवन-यापन के दूसरे साधन तक बहुत कुछ प्राप्त है और वह इतना अधिक तथा विस्तृत है कि मनुष्य उसे देखकर दाँतों तले अंगुली ही रख सकता है।

उदाहरण के लिए जीवाणुओं की अपनी दुनिया है। ये बहुत छोटे हैं। उनमें से कितने ही तो ऐसे हैं जो सूक्ष्म-दर्शी यंत्रों की सहायता के बिना खुली आँखों से नहीं देखे जा सकते। इतना होते हुए भी उन्हें अपने स्तर का क्रिया-कलाप, जीवन यापन करने की आश्चर्य जनक क्षमता प्राप्त है। शरीर के अनुपात से उन्हें जितनी सामर्थ्य प्राप्त है उसी हिसाब से हमारे शरीर के लिए कितनी सामर्थ्य चाहिए? इसका हिसाब लगाया जाए तो प्रतीत होगा कि उन जीवों की तुलना में मनुष्य को प्रकृति के अनुदान बहुत ही स्वल्प मात्रा में प्राप्त हैं। जीवाणुओं को उनके छोटे कलेवर के अनुसार जो कुछ मिला है, यदि वही अनुदान मनुष्य को प्राप्त रहा होता तो उसकी क्षमता इतनी अधिक होती जितनी कि हम देवताओं की सामर्थ्य के रूप में करते हैं।

जीवित प्राणियों में सबसे सूक्ष्म इकाई अमीबा है, इनमें 'तरल' प्रोटोप्लाज्म भरा रहता हैं। ऊपर से ग्लूकोज की झिल्ली रहती है। इनका आकार प्रायः एक इन्च का पच्चीस हजारवाँ भाग होता है। ये स्वयं ही अपने शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में प्रजनन करते हैं। २४ घण्टे में प्रायः एक जीवाणु लगभग डेढ़ करोड़ नये जीवाणु उत्पन्न कर देता है और प्रत्येक जीवाणु अपने जन्म के प्रायः पन्द्रह मिनट बाद प्रजनन योग्य प्रौढ़ता प्राप्त कर लेता है। सूर्य का तीव्र ताप इनकी मृत्यु का प्रधान कारण होता है। इनमें कोमलता और अशक्तता बहुत होती है। पर इतने पर भी प्रकृति ने इन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वे सभी विशेषताएँ प्रदान कर दी हैं, जिनके आधार पर ये प्रलय से भी भयङ्कर विपत्तियों से जूझते हुए अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकते हैं।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि पृथ्वी पर जीवन चेतना का अवतरण सर्व प्रथम जीव द्रव्य के रूप में हुआ। धरती की उष्णता शान्त होकर जब जीवधारियों के योग्य हुई तो सबसे पहले जीव द्रव्य प्रोटोप्लाज्म उत्पन्न हुआ। प्रथम जीवधारी, जीव द्रव्य की बूँदों के सम्मिश्रण से नहीं बना, वरन् वह एक स्वतन्त्र सत्ता सम्पन्न एक कोषीय जीव था। उपलब्ध अमीबा उसी के स्तर का जीव था। यह एक कोशीय जीव नदी, तालाबों, नालियों एवं कीचड़ जैसे स्थानों में पाया जाता है और इसका आकार प्रायः इन्च के सौवें भाग के बराबर होता है। इनके ऊपर एक पतली झिल्ली चढ़ी रहती है जिसे प्लाज्मा लेमा कहते हैं। इसमें कई-कई शंकुपाद हाथी की सूँड़ के समान निकले रहते हैं और वह अपना आहार इन्हीं के सहारे पकड़ता तथा खींचता रहता है।

अमीबा प्रौढ़ हो जाने पर अपने आपको ही दो टुकड़ों में विभाजित कर लेता है। उसकी वंश परम्परा इसी प्रकार बढ़ती है। विभाजन के पूर्व वह अपनी आकृति को गोलाकार बनाता है और इस प्रकार अपनी आकृति को बढ़ाते हुए वह मध्य में पतला होते हुए दो टुकड़ों में बँट जाता है। इस भाँति उसके विभाजन, प्रजनन कर्म को सम्पन्न होने में लगभग डेढ़ घण्टे का समय लगता है।

जड़ परमाणुओं की चर्चा भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र में प्रायः होती रहती है। इन परमाणुओं की भाँति ही सजीव जगत में भी कई प्रकार के परमाणु होते हैं, इनमें से एक होता है—डायटम। डायटम का अर्थ होता है दो परमाणुओं की शक्ति वाला। यों ये वनस्पति वर्ग में आते हैं किन्तु इनमें पेड़, पौधे जैसे प्रत्यक्ष लक्षण नहीं दिखाई देते। इसका आकार इन्च के पचासवें हिस्से से लेकर हजारवें हिस्से के बराबर तक होता है। वे सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों की सहायता से ही देखे जा सकते हैं।

इनकी आकृति को किसी सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से विस्तारित रूप में देखा जाए तो इतने सुन्दर और चित्र-विचित्र दिखाई देते हैं कि देखने वाला इनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर रह जाता है। लगता है किसी बहुत ही कुशल कारीगर ने इन्हें अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का उपयोग कर पच्चीकारी और मीनाकारी को एक से एक सुन्दर डिजायनों के रूप में गढ़ा है। गुलदस्ते, रत्नजडित हार, डिजायनदार कालीन जैसी कितनी ही कलात्मक वस्तुओं और केकड़ा, कानखजूरा, स्फटिक, कच्छप जैसे प्राणियों की तरह एवं कई प्रकार के पुष्प गुच्छाओं के रूप में इन्हें सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता है। देखने वालों को अचम्भा होता है कि इतने छोटे, असमर्थ और अविकसित प्राणी पर नियति ने कितनी सुन्दरता से अपनी कलाकृति का अनुदान बखेरा है। इनकी चाल इतनी विचित्र है कि यह न केवल वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य का विषय है, अपितु मनुष्य मात्र को बहुत कुछ सिखाती भी है। कितने ही यन्त्रों का गतिक्रम निर्धारण करने में इन छोटे डायटमों के अध्ययन से महत्वपूर्ण मार्ग सूचक संकेत मिले हैं। इनमें से कुछ टैंक की तरह तो कुछ जलयान की तरह, कुछ राकेट की तरह और कुछ बिजली की तरह आगे पीछे हटते, बढ़ते अपनी गति का प्रदर्शन करते हैं। ये भी अपने आपको दो टुकड़ों में विभाजित करके एक से दो बनते हैं।

जड़ अण्ड 'परमाणु' के नाम से पुकारे जाते हैं और चेतन प्राणधारियों में काम करने वाले चेतन अण्डजों को कोशिकाएँ कहते हैं। यों ये कोशिकाएँ भी अण्डजों से ही अपने आप निर्मित होती हैं, पर उनमें चेतना का अतिरिक्त अंश मिल जाने से उन्हें दूसरे वर्ग में रखा गया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जड़ जगत अण्डजों से और चेतन सृष्टि जीवाणुओं तथा कोशिकाओं से बनी है। जिस प्रकार परमाणु के भीतर भी कई अनोखी सृष्टि होती है उसी प्रकार कोशिकाओं के भीतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी एक पूरा चेतन सरोवर भरा हुआ होता है। इन दोनों को अलग इकाइयाँ समझा जाता है, पर ये अविच्छिन्न नहीं है। इनके भीतर भी विश्लेषण करने जैसे असीम तत्व और अगणित भेद-प्रभेद भरे होते हैं इस लघुता का अन्त भी विराट् के अन्त की तरह अभी तो बुद्धि की सीमा से बाहर ही दीखता है जिसे जितना खोजते हैं उतनी ही एक के भीतर एक नई-नई पर्तें निकलती चली जाती हैं।

जीव परिवार में सभी सदस्य पौधे और प्राणी सभी कोशिकाओं से बने हुए हैं। ये कोशिकाएँ एक विशेष प्रकार के चिपचिपे पदार्थ से भरी होती है। ये कोशिकाएँ अपनी पूर्ववर्ती कोशिकाओं के विभाजन से बड़ी होती है और विभाजन क्रम से ही उनकी आगे की वंश वृद्धि होती रहती है, प्राणी की वृद्धि, विकास, आनुवंशिकता, बलिष्ठता, दुर्बलता, जरा, मृत्यु, मनःस्थिति आदि का आधार इन कोशिकाओं की आन्तरिक संरचना पर ही निर्भर रहता है। इस प्रकार हम चाहें तो इन कोशिकाओं को भी एक स्वतन्त्र जीवधारी जैसी संरचना कह सकते हैं। जीव का सामान स्वरूप इन जीवाणु कोशिकाओं के संगठन का ही दूसरा नाम है।

संसार का सबसे छोटा और लघुकाय प्राणी अमीबा है। अमीबा जैसे और भी कई जीव हैं जो एक कोशीय होते हैं। अन्य विकसित और बड़े प्राणियों मे इनकी संख्या अधिक होती है। १६० पौंड के वयस्क पुरुष में ६० हजार अरब तक कोशिकाएँ होती हैं। इनके भीतर भरे हुए प्रदार्थ को प्रोटोप्लाज्म कहा जाता है। इसके ऊपर चढ़ी हुई झिल्ली इतनी लचीली होती है कि उसमें होकर आवश्यक आदान-प्रदान होता रहता है, किन्तु वह अवांछनीय प्रवेश को रोके रहती हैं। प्रोटोप्लाज्म या जीव द्रव्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक साइटोप्लाज्म और दूसरा न्यूक्लीयस। साइटोप्लाज्म में लवण, बसायें, शर्करा, प्रोटीन, खनिज जैसे अनेकों पदार्थ सम्मिश्रित होते हैं। न्यूक्लीयस उसी के भीतर एक अचेतन मृत सघन गेंद की तरह रहता है। उसकी संरचना क्रोमसोम समूह के न्यूक्लीओस पदार्थों से होती है।

मानव शरीर की कोशिकाओं में ४६ क्रोमोसोम होते हैं। इनमें भी बहुत छोटे-छोटे कण होते हैं, जिन्हें जीन कहा जाता है। वंश परम्परा से वे उत्तराधिकार इन जीवों द्वारा हो भावी पीढ़ी पर उतरते हैं। इन जीवों को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है और उनके सम्बन्ध में अधिक बारीकी तथा तत्परता के साथ खोज की जा रही है। यदि गहराई में उतर कर देखा जाए तो ये जीन भी एक स्वतन्त्र सत्ता कहे जा सकने जैसी स्थिति में होते हैं।

निर्जीव समझे जाने वाले रासायनिक पदार्थों की स्थिति जड़ अचेतन स्तर की दयनीय और दीन-हीन प्रतीत होती है। प्रायः तो उन्हें जड़ कह कर चेतन जगत से बहिष्कृत ही मान लिया जाता है, पर वैज्ञानिक अन्वेषणों से यह पता चला है कि निर्जीव कहलाने वाले इन रासायनिक पदार्थों में भी वह अद्भुत शक्ति भरी पड़ी है, जिससे वे निर्जीव होते हुए भी जीवन को, जीवधारियों को उत्पन्न कर सके। लेकिन इनमें वह शक्ति तभी क्रियान्वित हो सकती है जब ये परस्पर घुल-मिलकर रहने के लिए तत्पर हो जाएँ। अलग-अलग रहने की पृथक्तावादी नीति जब तक ये अपनाये रहते हैं तभी तक वे जड़ हैं, पर जिस क्षण वे रासायनिक द्रव्य में सन्तुलित रूप से एकत्रित होते हैं, उसी क्षण द्रव्य के रूप में चेतना का संचार होने लगता है।

जीव द्रव्य या प्रोटोप्लाज्म कुछ रासायनिक तत्वों का सम्मिश्रण मात्र समझा जाता है। कार्बन, क्लोरीन, आयोडीन, मैग्नीशियम आदि रासायनिक पदार्थों का समन्वयीकरण इस जीव द्रव्य को विनिर्मित करने की भूमिका सम्पादित करता है। प्रकृति परिवार में, सृष्टि परिवार में रहने वाले सभी छोटे-बड़े सदस्यों के सम्बन्ध में हमें मानना चाहिए कि हम न तो सृष्टि के सबसे बड़े और महान प्राणी हैं और न ही प्रकृति ने हमें कोई विशिष्ट क्षमताएँ प्रदान कर पक्षपात बरता है। इस आधार पर न उपलब्धियों पर उद्धत होना चाहिए तथा न ही उद्धत साथ ही छोटे प्रतीत होने वाले प्राणियों को न हेय दृष्टि से देखें न तुच्छ समझें तथा न ही दयनीय दुर्भागी, वरन् यही समझते हुए अपनी जीवन नीति निर्धारित करें कि सृष्टि के प्रत्येक घटक में ईश्वर की दिव्य-ज्योति विद्यमान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वरदायी अभिशाप

जुए में सारा राजपाट हार जाने के बाद दुर्योधन द्वारा पुनः निमन्त्रित किये जाने पर धूत क्रीड़ा के लिए बैठे युधिष्ठिर फिर हार गए और अबकी बार उन्हें वनवास के लिए जाना पड़ा। पाण्डव उन दिनों वनवास में जीवन व्यतीत कर रहे थे तभी भगवान वेदव्यास ने अर्जुन को तपस्या की प्रेरणा दी। दिव्य दृष्टि से भगवान व्यास को यह ज्ञात हो गया था कि महाभारत अवश्यम्भावी है। इस महासागर में पाण्डवों का पक्ष सुदृढ़ करने के लिए ही उन्होंने अर्जुन को तपश्चर्या के लिए जाने का परामर्श दिया था।

अपने भाइयों से अनुमति प्राप्त कर अर्जुन हिमालय पर तप करने चले गए। वहाँ उन्होंने तप के द्वारा भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया। अवढर दानी भगवान शंकर प्रसन्न होकर अर्जुन को पाशुपतास्त्र दिया, जो अजेय और अमोघ था।

शिव से अनुगृहीत होने के उपरान्त अर्जुन के पास देवलोक से देवराज इन्द्र आये और उन्हें अपने दिव्यरथ में बिठा कर स्वर्गलोक ले गए। वहाँ इन्द्र ने तथा अन्य लोकपालों ने अर्जुन को अनेकानेक दिव्यास्त्र प्रदान किये तथा वनवास की समाप्ति के बाद निश्चित रूप से सम्भावित महाभारत युद्ध में सहयोग देने, उनकी ओर से युद्ध करने का आश्वासन दिया।

इन्द्र के पास रहते समय ही देवताओं के शत्रु निवातकवच नामक असुर ने देवलोक पर आक्रमण किया। गाण्डीवधारी अर्जुन ने अकेले ही इस असुर का सामना किया और द्वन्द युद्ध कर उसे परास्त कर दिया।

असुरों पर विजय प्राप्त कर जब अर्जुन अमरावती लौटे तो देवताओं ने बड़े उल्लास से उनका स्वागत किया। देवसभा में उन्हें इन्द्र ने अपने समीप अपने समकक्ष सिंहासन पर बिठाया। गन्धर्वगणों ने वीणा उठाई और मधुर रागनियाँ छेड़ीं। अप्सराओं ने नृत्य आरम्भ किया। देव प्रतिहारी एक-एक कर अप्सराओं के नाम पुकारता और वह अप्सरा अपनी सम्पूर्ण नृत्यकला का परिचय देती हुई सहनर्तकियों के साथ नृत्य करती। अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वों की रागिनियों से देवसभा के वातावरण में मुग्ध कर देने वाली झंकृति व्याप्त हो जाती। परन्तु जिस अतिथि के स्वागत में यह सब हो रहा था, वह इन सबसे असंपृक्त-सा शान्त अपने आसन पर विराजमान था। स्वर्ग के इस वैभव विलासमय वातावरण में बैठे अर्जुन को वल्कलधारी, कन्दमूल खाकर निर्वाह करने और भूमिशयन कर क्लांति मिटाने वाले वनवासी भाई स्मरण आ रहे थे। उनकी स्मृति मानस पटल पर रह-रहकर उभर आने से अर्जुन को इन सबमें तनिक भी रस और आकर्षण नहीं अनुभव हो रहा था।

नृत्य चल रहा था। एक अप्सरा आ रही थी और पूर्ववर्ती अप्सरा जा रही थी। इसी क्रम में देव प्रतिहारी ने उर्वशी का नाम लिया। अर्जुन ने उर्वशी की ओर सिर उठा कर देखा। इसके पूर्व उन्होंने किसी अप्सरा की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा था। देव प्रतिहारी ने जब उर्वशी का नाम लिया तो अर्जुन की दृष्टि सहसा उठ गई थी और उन्होंने नृत्यरत उर्वशी को कई बार देखा भी था।

निकट ही बैठे देवराज इन्द्र ने अर्जुन की यह दृष्टि लक्षित कर ली और महोत्सव समाप्त होने पर गन्धर्वराज चित्रसेन को अपने पास बुला कर कहा, उर्वशी के पास जाकर मेरी यह आज्ञा सूचित कर दो कि वे आज रात्रि में अर्जुन की सेवा में रहें। अर्जुन हम सबके परमप्रिय हैं। उन्होंने हम पर उपकार किया है। उन्हें प्रत्येक भाँति प्रसन्न रखना हमारा कर्त्तव्य है।

तप तेज से कान्तिमान अर्जुन की स्वर्णिम काया, उन्नत ललाट, पुरुषोचित सौन्दर्य और भव्य व्यक्तित्व देखकर उर्वशी स्वयं उन पर अनुरक्त हो चुकी थी। चित्रसेन द्वारा जब उसे देवराज इन्द्र का यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदेश मिला तो अयाचित और अनायास ही अपना मनोरथ पूरा हो जाने से उसने आदेश को अनुमति मान कर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उर्वशी अपने स्वर्गिक रूप सौन्दर्य का जितना शृंगार सज्जित कर सकती थी, किया और रात्रि का प्रथम प्रहर बीतते ही अर्जुन के कक्ष में जा पहुँची।

अर्जुन उस समय जाग ही रहे थे। उन्हें वन में कष्ट सह रहे अपने भाई, माता और पत्नी का स्मरण आ रहा था। उनके कष्टों की कल्पनाएँ मन में रह-रहकर उठ रही थीं और वे उन कल्पनाओं से व्यथित होकर शय्या पर इधर-उधर करवटें बदल रहे थे। उर्वशी ने जैसे ही उनके कक्ष में प्रवेश किया, अर्जुन शय्या छोड़कर उठ खड़े हुए तथा मस्तक झुका कर करबद्ध प्रणाम करते हुए बोले, 'माता! आप इस समय कैसे पधारीं। आपकी क्या सेवा करूँ?'

माता सम्बोधन सुनकर ही उर्वशी जैसे आकाश से जमीन पर गिर पड़ी। विस्मय आघात को सम्हालते हुए उर्वशी ने बतलाया कि वह स्वयं अर्जुन पर आसक्त है तथा देवराज इन्द्र ने भी ऐसा ही आदेश दिया है। उर्वशी ने आग्रह किया कि वे उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लें।

'आप मुझसे ऐसी अनुचित बात फिर न कहना।' अर्जुन ने स्थिर भाव से कहा, 'मैंने महर्षिगणों से सुन रखा है कि आप ही कुरुकुल की जननी हैं। आज के महोत्सव में जब देव प्रतिहारी ने आपका नाम लिया तो मुझे यह स्मरण हो आया और आपके दर्शन की इच्छा अनायास ही जाग्रत हो गई। इस इच्छा से प्रेरित होकर मैंने अपनी कुलमाता समझ कर आपके पावन चरणकमलों के अनेक बार दर्शन किए, प्रतीत होता है इसी से देवराज को भ्रम हो गया।'

भ्रम हुआ हो या यथार्थ अनुभव, उर्वशी ने समझाया, 'पार्थ यह ध्यान रखो कि यह पृथ्वी नहीं स्वर्ग है। हम अप्सराएँ न किसी की माता हैं न बहिन। स्वर्ग में आया हुआ प्रत्येक प्राणी अपनी स्थिति के अनुसार हमारे यौवन का उपभोग कर सकता है। यही यहाँ का नियम है और मैं स्वयं अपनी ओर से प्रस्तुत हूँ।'

रात्रि का एकान्त समय। शृंगार विभूषित स्वर्ग राज्य की सर्वश्रेष्ठ अक्षय रूप यौवन सम्पन्न अप्सरा उर्वशी का प्रणय निवेदन, किन्तु धर्मज्ञ अर्जुन के चित्त को कामदेव स्पर्श भी नहीं कर सका। उन्होंने पूर्व की भाँति ही करबद्ध विनती की। आर्य! जिस प्रकार कुन्ती मेरी माता है, जिस प्रकार माद्री मेरी माता है और जिस प्रकार इन्द्राणी शची देवी मेरी माता है उसी प्रकार आप भी मेरी माता हैं। आप मुझे पुत्र समझ कर ही अनुगृहीत करें और मेरे योग्य कोई सेवा बताएँ।'

अर्जुन अपने पवित्र भावों को व्यक्त कर रहे थे और उर्वशी को इस प्रकार के भाव अपना अपमान प्रतीत हो रहे थे। किसी ऋषि ने भी उसकी इस प्रकार उपेक्षा नहीं की थी, जैसे अर्जुन कर रहे थे। जिसे भी, जब भी चाहा उर्वशी ने अपने कमनीय कोमल और उद्दीपक सौन्दर्य से पराभूत किया है। मृत्युलोक का एक प्राणी उसके आनिन्द्य अपूर्व और अद्वितीय सौन्दर्य की उपेक्षा कर रहा था। उर्वशी इस अपमान से विदग्ध हो उठी और उसने क्रुद्ध होकर अर्जुन को शाप दिया, 'अर्जुन, तुम नपुंसक की भाँति मेरे निवेदन को अस्वीकार कर रहे हो। मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हें पुंसत्व हीनों की भाँति रहकर एक वर्ष तक स्त्रियों के बीच नाचते, गाते हुए रहना पड़ेगा।'

इतना कहकर उर्वशी वहाँ से फुफकारती हुई चली गई। अर्जुन इस शाप से भी अविचलित रहे और उन्होंने जाती हुई उर्वशी को शिरसा प्रणाम किया। प्रातःकाल देवराज इन्द्र को यह सारा घटना-क्रम विदित हुआ। अर्जुन की संयम निष्ठा पर प्रसन्न होते हुए उन्होंने कहा, 'धनंजय! धर्म का पालन करने वाले पर कभी विपत्ति नहीं आती। यदि कोई विपत्ति आती भी है तो अन्ततः उससे मंगल ही होगा। उर्वशी का शाप एक मानव वर्ष तक रहेगा और उस शाप के कारण वनवास के अन्तिम अज्ञातवास वाले एक वर्ष के समय में तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। तुम्हारे लिए यह शाप भी उस समय वरदान ही सिद्ध होगा क्योंकि धर्म पर दृढ़ रहने के कारण तुम निर्दोष होते हुए भी शाप के भागी बने हो।

—●—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कार भी चेतना के साथ चलते हैं

क्या मृत्यु के बाद मनुष्य का अस्तित्व सचमुच सदा के लिए समाप्त हो जाता है? या वह किसी न किसी रूप में फिर भी बना रहता है? मर चुके व्यक्ति क्या पुनः जन्म लेते हैं? आदि प्रश्न ऐसे हैं, जिनका विज्ञान के पास फिलहाल कोई उत्तर नहीं है। किन्तु ऐसे असंख्यों उदाहरण हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि मरने के बाद भी मनुष्य का अस्तित्व विद्यमान रहता है। केवल शरीर ही नष्ट होता है, आत्म-चेतना शरीर के पिंजड़े से मुक्त होकर दूसरा नया शरीर तलाशने लगती है। इस तरह के हजारों मामले अब तक प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें सम्बन्धित व्यक्तियों ने उसी समय से अपने पिछले जन्म के बारे में बताना आरम्भ कर दिया, जबकि वे ठीक से इस जन्म के बारे में भी जानने-समझने या व्यक्त कर पाने की स्थिति में नहीं थे।

कईबार तो ऐसे उदाहरण भी देखने में आए हैं, जिनमें छोटे बच्चों ने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया और अपने परिवार के लोगों को चमत्कृत कर दिया। उनकी यह विलक्षणता उनके परिवार, पास-पड़ोस के लोगों, मोहल्लों तथा गाँवों, नगरों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि सैकड़ों विद्वानों और अपने-अपने क्षेत्र के प्रभृतिजनों के लिए विस्मय का कारण बनी। ऐसा ही एक उदाहरण उत्तर प्रदेश का है। सन् १९४७ में झाँसी जिले के यौनी ग्राम में एक विचित्र बालक का जन्म हुआ। हलकूराम लोधी के घर में जन्मे इस बालक का डील-डौल पैदा होते ही तीन वर्ष के बच्चे के समान था, साथ ही वह नेत्रहीन भी था। जब उसकी आयु छह मास हो गई तो वह रामचरित मानस के दोहे और चौपाइयाँ गाने लगा। सामान्यतः छह माह की आयु में कोई बच्चा कुछ गाना याद करना तो क्या, ठीक से बोल भी नहीं पाता। इस बच्चे द्वारा रामायण के दोहे, चौपाइयाँ गाते देखकर सभी ग्रामवासी आश्चर्यचकित रह गए।

दो वर्ष का हो जाने पर बालक को निकटस्थ कस्बे मऊरानीपुर के रामायणी पण्डितों ने परीक्षा के लिए बुलाया कि उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा बताया जाता है उसमें कितनी सचाई है? उन पण्डितों के सामने बालक ने बिना किसी पुस्तक का सहारा लिए तीन घण्टे तक लगातार रामायण के दोहे चौपाई गाकर सुनाये। यह कार्यक्रम तीन दिनों तक चला और बालक ने बिना किसी का सहयोग लिए उसी प्रकार रामचरित मानस गा-गाकर सुनाई। इस जन्मान्ध बालक ने तीन वर्ष का होने तक कईबार अपनी इस विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। जगह-जगह से लोग उसे देखने आने लगे। उसे पूर्व जन्म का कोई विद्वान, सन्त महात्मा समझा जाने लगा। यही नहीं कई स्थानों पर तो हलकूराम को अपने बेटे के साथ बुलाया गया तथा उसने सिमघट, सागर, ग्वालियर, लाहौर और हरिद्वार में विद्वमंडली के सामने रामायण के पाठ सुनाये।

राधाचरण नाम के इस जन्मान्ध बालक ने छोटी-सी आयु में, जब बच्चे पहली दूसरी कक्षा में पढ़ते हैं भगवद्गीता, वाल्मिकी रामायण आदि धर्म ग्रन्थों के उद्धरण देकर पाँच-पाँच घण्टे तक धारा प्रवाह व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। लोग राधाचरण की इस विलक्षण प्रतिभा से चमत्कृत हुए। उसकी यह विशेषता थी कि किसी भी ग्रन्थ का कोई एक उद्धरण बता दिया जाए तो वह उस पर प्रवचन दे लेता था। राधाचरण ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त भी बताया। वह कहा करता था कि पिछले जन्म में वह मुतंगेश्वर (पम्बापुर) की एक गुफा में साधना किया करता था और साधना करते हुए ही उसकी मृत्यु हुई। उसने गुफा तक पहुँचने का मार्ग तथा उसमें रखे अपने चिमटे और खड़ाऊ के बारे में भी बताया। लोगों ने उस स्थान पर जाकर देखा तो सब कुछ सही पाया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिछले जन्म की घटनाओं और स्थितियों का सही-सही विवरण देने वाले मामले तो हजारों की संख्या में प्रकाश में आए हैं। ऐसे केसों को लेकर वैज्ञानिकों का ध्यान भी आकृष्ट हुआ है और देश विदेश में अनेकों संस्थाएँ पुनर्जन्म की घटनाओं पर शोध करने पर संलग्न हुई हैं भारत की इन्डियन पैरासाइकिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट' संस्था ने अमेरिका के डा० आयन इन्स्टीवेन्स, रावर्ट कूकाल, डा० एच० एन० वनर्जी तथा डा० जमुना प्रसाद के सहयोग व निर्देशन में भारत, अमेरिका, ब्रिटेन तथा जर्मनी में पुनर्जन्म की कई घटनाओं का अध्ययन और सर्वेक्षण किया है। इनमें कुछ घटनाएँ पुनर्जन्म के सम्बन्ध में शोध की नई दिशाएँ और सम्भावनाएँ खोलती हैं।

पश्चिम जर्मनी के आगस्वर्ग नामक स्थान पर जन्मी-फ्रैडरिका का केस इस तरह की घटनाओं में बहुत दिलचस्प है। उसका रंग, रूप, कद काठी तो जर्मनों की तरह ही है, परन्तु उसकी आँखें भारतीय महिलाओं की तरह काली और केश भी भारतीय स्त्रियों जैसे ही थे। कम उम्र में ही उसने विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया और पढ़ना-लिखना सीख लिया। वह अपना प्रत्येक काम अपनी उम्र के बच्चों की अपेक्षा अधिक कुशलता और स्फूर्ति के साथ निवटा लेती थी। जब वह तेरह-चौदह वर्ष की थी, तभी उसने जर्मन, डच और अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। भारतीय भाषाओं में उसने संस्कृत को सीखने में बड़ी कुशाग्रता का परिचय दिया। उल्लेखनीय है कि जर्मनी की लगभग सभी शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत के अध्यापन अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है। फ्रैडरिका ने इस व्यवस्था का लाभ तो उठाया ही भारतीय धर्म-दर्शन के अध्ययन-मनन में भी उसने पर्याप्त रुचि ली और कुछ ही समय बीतते वह पूजापाठ करने लगी, उसने वेद-पुराणों और आर्ष ग्रन्थों के कई अंश कण्ठस्थ कर लिए। किशोरावस्था में प्रवेश करने तक तो वह ज्योतिष, अंकशास्त्र, पराविद्या, ब्रह्म-विद्या, योगचक्र कुण्डलिनी आदि के विषय में भी इस प्रकार बातें करने लगी, जैसे वह इन विषयों की अधिकारी विद्वान हो।

फ्रैडरिका के पिता बैंक में नौकरी करते थे। परिवार की स्थिति सामान्य थी। माँ अपनी बेटी के इस स्वभाव और रुझान को देखकर चिन्तित रहने लगी थी। बचपन में ही उसने अपनी माँ को चिन्ताओं का समाधान करते हुए बताया कि वह पिछले जन्म में एक धर्म परायण भारतीय महिला थी और उसका सारा जीवन ही धार्मिक कर्मकाण्डों तथा पूजापाठों को करते हुए व्यतीत हुआ था। उसने वेद, पुराणों और अन्य भारतीय धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। एक दुर्घटना में जब उसकी मृत्यु हुई तो मरने के पूर्व उसे अच्छी तरह होश था तथा वह मरते समय यही सोचती रही थी कि उसे अगला जन्म जहाँ कहीं भी मिले, वेद, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों के अध्ययन में उसकी रुचि इसी प्रकार बनी रहे।

फरवरी १९७९ में फ्रैडरिका भारत भी आई। यहाँ उससे बरेली की पराविद्या शोध-संस्थान की उस यूनिट ने सम्पर्क किया जो पुनर्जन्म पर शोध कर रही थी। फ्रैडरिका ने अपने पिछले जन्म का जो भी विवरण बताया, यथा जन्म स्थान, माता-पिता का नाम, परिवार के सम्बन्ध में परिचय, पति और पति के परिवार की जानकारी, बच्चों के नाम आदि के सम्बन्ध में उसने जो भी वक्तव्य दिये वे सब टेप किये गए और उस आधार पर जाँच की गई तो बताये गए सभी विवरण सही पाये गए।

उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में भी इसी प्रकार की एक घटना प्रकाश में आई है, जिसमें एक हरिजन महिला ने मरने के बाद एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। सन् १९६९ में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के घर में जन्मी इसी कन्या को अपने पिछले जन्म की याद उस समय आई जब वह अपने पिता के साथ रेल से कहीं जा रही थी। रेल पर सवार होते ही बच्ची हकबका गई। भय के कारण उसका चेहरा पीला पड़ गया। पिता को कोई कारण समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक उसे क्या हो गया है? पूछने पर बहुत देर बाद उस लड़की ने अपनी तुतली जबान से बताया कि इसी रेल गाड़ी से कटकर वह मर गई थी।

पिता ने इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और बात आई-गई हो गई। एक दिन लक्ष्मीनारायण जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के घर एक हरिजन घूरे पर पड़ा खर-पतवार माँगने आया। उसने एक सूअर मारा था और उसे भून कर खाने के लिए ही यह खर-पतवार माँगने के लिए आया था। लड़की ने यह जानकर सूअर का मांस खाने की जिद की। मिश्रजी के डाँटने पर उसने तनक कर कहा, 'मेरा तुमसे क्या रिश्ता? मैं कंकरिया की रहने वाली हूँ। इन्दल मेरे बेटे का नाम है तथा ललई मेरा दूल्हा है। तुम छोड़ दो मुझे, मैं अपने घर चली जाऊँगी।

पिता और घर के अन्य लोग यह सुनकर दुःखी हुए और सोचने लगे कि कहीं उस पर किसी प्रेतात्मा का प्रकोप तो नहीं हुआ है। लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। पीछे कुछ लोगों की सलाह पर उसके बताये संकेतों के अनुसार जाँच-पड़ताल की गई तो पता चला कि वह जो कुछ भी बता रही थी—वह सच है।

पिछले जन्मों की स्मृतियों के यह प्रमाण सिद्ध करते हैं कि मृत्यु केवल शरीर को ही मारती है। चेतना में जमे संस्कार न तो आसानी से नष्ट होते हैं तथा न ही उनमें विशेष परिवर्तन आता है। अलबत्ता ये संस्कार थोड़े बहुत बदल जरूर जाते हैं, किन्तु उनमें पूर्णतः परिवर्तन नहीं होता, संस्कारों का निर्माण दीर्घकालीन अभ्यासों से होता है। उनकी जड़ें चेतना में गहराई तक जमी हों तो वे मरने के बाद दूसरे जन्म में भी पूर्ववत् प्रकट होने लगते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व और कृतित्व उन्हीं के अनुरूप संचालित होने लगता है। यदि ऐसा नहीं हो तो भी व्यक्ति उन पूर्ववर्ती संस्कारों से बहुत सीमा तक प्रभावित होता है तथा तदनुकूल आचरण करता है, भले ही उसे पिछले जन्म की याद रहे या न रहे।

आत्मिक विकास के लिए आचार-विचार के परिष्कार और आहार-विहार के संयम पर इसीलिए महत्व दिया जाता है कि उनसे ही संस्कारों का निर्माण होता है तथा वे संस्कार व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ★

सुल्तान महमूद गजनवी अपनी सभा में विद्वानों का बहुत आदर करता था शेख अब्दुल हसन फरकान एक प्रसिद्ध भगवद् भक्त थे वे हमेशा ईश्वर के कार्य में तल्लीन रहते थे। समय पर रूखा-सूखा जो भी उन्हें प्राप्त होता उसे भगवान का प्रसाद मानकर बड़े प्रेम से खाते थे। इनकी प्रसिद्धि सुनकर सुल्तान एक बार दर्शनार्थ इनके यहाँ गए और भेंट में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ फकीर के चरण कमलों में रख दीं।

शेख फरकान ने सुल्तान के आतिथ्य में रूखी सूखी रोटी प्रसाद रूप में भेंट की, लेकिन वह रोटी इतनी कड़ी तथा बेस्वाद थीं कि सुलतान के गले तथा दाँतों ने अति कठिनता के पश्चात उदर में पहुँचायी।

यह सब देख शेख फरकान सुल्तान से बोले—'जिस प्रकार मेरी दी हुई खाद्य वस्तु तुम्हारे गले से नहीं उतर रही है, उसी प्रकार तुम्हारी दी हुई वस्तु को मैं कैसे पचा सकता हूँ? अतः सुल्तान! ये अपनी स्वर्ण-मुद्रायें वापस ले जाओ। ये मेरे कुछ भी काम की नहीं हैं।' शेख फरकान के यह वचन सुनकर सुल्तान की आँखें नीची हो गईं और उनकी आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगे। फिर सुल्तान चुपचाप उठा और वापस जाने के लिए शेख फरकान से इजाजत चाही। इस पर शेख खड़े हो गए। यह देख सुल्तान को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने विनम्र होकर पूछा—"जब मैं आया था तो आप अपनी जगह से हिले तक नहीं और जब मैं जाने को तैयार हुआ तो आप मेरे सम्मान में उठकर खड़े हो गए। इसका क्या कारण है? शेख अब्दुल फरकान सुल्तान गजनवी का यह प्रश्न सुनकर पहिले तो मुस्कराये, इसके बाद अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—सुनो सुल्तान! जब तुम आए तो तुम्हारे हाथ में स्वर्ण मुद्राओं की थैली थी, सिर पर अहंकार का भूत सवार था। लेकिन अब जब कि तुम जा रहे हो तो वह भूत तुम्हारे सिर से उतर चुका है। इसलिए अब तुम आदर के योग्य हो गए हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेतना के विकास में परिवेश का महत्व

जिस वातावरण में, जैसे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ता है, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। मनुष्य को बहुत कुछ अपने भाग्य, भविष्य और व्यक्तित्व का निर्माता स्वयं कहा जाता है, परन्तु उसका इच्छित निर्माण भी तभी सम्भव होता है जबकि उपयुक्त वातावरण मिले। उपयुक्त वातावरण के अभाव में वे परिस्थितियाँ और सुविधाएँ उपलब्ध ही नहीं होतीं जो अभीष्ट विकास के लिए आवश्यक हैं। इसीलिए मनीषियों ने उच्चस्तरीय आत्मिक विकास के लिए सत्पुरुषों की संगति करने, परिमार्जित और परिष्कृत वातावरण में रहने तथा आत्मविकास के लिए समुचित प्रयत्न करते रहने का निर्देश दिया है।

वातावरण, परिवेश या परिस्थितियाँ मनुष्य को किस प्रकार प्रभावित करती हैं? इसका अच्छा उदाहरण जुड़वाँ बच्चों में देखा जा सकता है। एक साथ एक ही गर्भ से जन्म लेने वाले बच्चों के स्वभाव, स्वास्थ्य, रंग, रूप और यहाँ तक कि चरित्र में भी अद्भुत साम्य देखा गया है। जन्म लेने के बाद भले ही परिस्थितियाँ भिन्न हो जाएँ, जुड़वाँ बच्चों को आगे चलकर भिन्न भिन्न कार्य क्षेत्र अपनाना पड़े परन्तु उनमें वह साम्य फिर भी कम नहीं होता। यह साम्य किस स्तर तक, किस सीमा के अन्दर तक घटाया या बढ़ाया जा सकता है? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये हैं और उनके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए हैं। अमेरिका के बोस्टन शहर में जन्मी दो जुड़वाँ बच्चियों पर किये गए प्रयोग इस सम्बन्ध में एक ठोस प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

वहाँ जन्मी दो लड़कियाँ जिल और वरोनिका को तीन महीने तक तो एक साथ पलने दिया गया। फिर उन्हें अलग-अलग कर दिया गया। जिल के पालन-पोषण की जिम्मेदारी जिस महिला को दी गई थी उसके और भी बच्चे थे तथा वह कठोर शारीरिक श्रम की आदी और सख्त अनुशासन प्रिय स्वभाव की थी। अपने बच्चों को भी उसने अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार साँचे में ढाला। वरोनिका की अभिभावक महिला सीधे-सादे किस्म की गृहिणी थी और वह दूसरों से ज्यादा मिलना-जुलना भी पसन्द नहीं करती थी। एकान्त उसे बहुत अच्छा लगता था, जबकि जिल की अभिभावक महिला सामाजिक कार्यों में बहुत रुचि लेती थी और एकान्त तो जैसे उसे काटने दौड़ता था।

जिल और वरोनिका के चेहरे-मोहरे में अद्भुत साम्य था। दोनों को एक साथ देखने पर उन्हें अच्छी तरह पहचानने वाले व्यक्तियों के लिए यह निश्चित कर पाना कठिन हो जाता था कि कौन जिल है और कौन वरोनिका? उन्हें जब स्कूल में भरती कराया गया तो पाया गया कि उनके स्वभाव एक-दूसरे से बहुत सीमा तक मिलते हैं। अलग-अलग स्थानों में, अलग-अलग प्रकृति की महिलाओं के संरक्षण में रहकर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर आभासित नहीं होता था।

जुड़वाँ बच्चे जीव विज्ञान के लिए अभी भी एक पहेली हैं। वैज्ञानिकों ने इस विषय में अनुसंधान की व्यापक योजनाएँ बनाई हैं। अकेले अमेरीका में सौ से अधिक ऐसे केन्द्र हैं जहाँ जुड़वाँ बच्चों के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। इन केन्द्रों में विभिन्न जुड़वाँ बच्चों के सम्पूर्ण जीवन की जानकारी एकत्रित की जाती है, उसका अध्ययन किया जाता है और उन्हें एक-दूसरे से सम्बद्ध किया जाता है। अब तक हुए अध्ययन से प्राप्त विभिन्न निष्कर्षों के अनुसार औसतन ४० में से एक बच्चा जुड़वाँ होता है, अर्थात ८० प्रसव होते हैं तो उनमें एक प्रसव से जुड़वाँ बच्चे जन्म लेते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जुड़वाँ बच्चों को जन्म के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक तो वह जिसमें दोनों बच्चों का एक साथ जन्म होता है, दूसरे बच्चे कुछ समय के अन्तर से होते हैं। इनमें से पहले वाले को युग्म जुड़वाँ बच्चे कहा जाता है तथा दूसरे प्रकार के बच्चों को सामान्य जुड़वाँ बच्चे। युग्म जुड़वाँ बच्चे एक ही डिम्ब से जन्म लेते हैं। देखने में वे अकसर एक जैसे लगते हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। केवल उनकी अंगुलियों के निशान ही अलग होते हैं। वे अलग सैक्स के हो सकते हैं और शक्ल में भी कुछ अन्तर हो सकता है। किन्तु यह अन्तर ऐसा नहीं होता कि सामान्य दृष्टि से देखा या समझा जा सके। स्वभाव तो लगभग एक समान ही होता है।

बर्किंघम के मातृत्व शोध संस्थान के वैज्ञानिकों ने जुड़वाँ बच्चों में कुछ अन्तर पाए हैं, किन्तु यह अन्तर सामान्य या सामान्य गम्भीरता से देखने पर पता नहीं चलता। इस पर भी उनके विचारों, आदतों और स्वभाव में अद्भुत साम्य देखा गया। विसेंट तथा मारग्रेट नामक दो वैज्ञानिकों ने सैकड़ों जुड़वा बच्चों पर शोध कर अनेक महत्वपूर्ण तथा विस्मयकारी निष्कर्ष ढूँढ़ निकाले हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक में कई जुड़वाँ बच्चों के उदाहरण दिये हैं। एक डॉक्टर की पत्नी का उदाहरण इसमें बेहद दिलचस्प है। नाम था उनका डोंग मार्टिन। वह एक पार्टी में सम्मिलित थी और हँस हँसकर अपने मित्रों से बातें कर रही थी। अचानक न जाने क्या हुआ कि वह उदास हो गई और फूट-फूट कर रोने लगी। डा० विसेंट भी उसी पार्टी में उपस्थित थे। मार्टिन को इस प्रकार रोते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ समय बाद उन्होंने इसके कारण तलाशते हुए पाया कि पार्टी में जिस समय मार्टिन रो उठी थी, उस समय उसकी जुड़वाँ बहन अचानक बीमार पड़ गई थी।

बर्किंघम शहर की ही एक और घटना का उल्लेख है- मारग्रेट एक परिवार में अतिथी थे। भेजवान परिवार की गृहिणी पूरी तरह सामान्य थी। वह प्रसन्न और स्वस्थ चित्त से अतिथियों का सत्कार कर रही थी। अचानक रसोई में से उनके कराहने का स्वर सुनाई दिया। मारग्रेट सहित परिवार के अन्य लोग दौड़े आए। देखा टैडी उसी प्रकार कराहते हुए रसोई के अपने काम में लगी है। पूछने पर उसने बताया अचानक उसके चेहरे, पीठ और पैरों में इस प्रकार दर्द होने लगा था, जैसे वह किसी दुर्घटना में आहत हो गई हो और उसे चोट लगी हो।

टैडी काफी समय तक उसी स्थिति में रही। चोट लगने जैसे दर्द का तत्काल कोई कारण समझ में नहीं आया पीछे पता चला कि उसी समय टैडी की बहन बैक्स एक कार दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो गई थी। उसके चेहरे, पीठ और पैरों पर काफी चोटें आई थीं तथा वह इस दुर्घटना के कारण बेहोश हो गई थी।

इस तरह की घटनाएँ अन्य जुड़वाँ बच्चों में भी पाई गई हैं। प्रायः उनमें से किसी एक को कोई तकलीफ होती है तो दूसरे को भी पता चल जाता है और बहुत बार वैसी ही पीड़ा वे भी अनुभव करने लगते हैं। ब्रिटेन की लेबरपार्टी के संसद सदस्य डगलस की बेटी कैथरीन ने जिस समय एक बच्चे को जन्म दिया उसी समय, उसकी जुड़वाँ बहन हेलन के पेट में भी सख्त पीड़ा हो रही थी। मानचेस्टर की बारबरा मैंगिन ने भी छह घण्टे तक अपनी जुड़वाँ बहन के साथ प्रसव वेदना झेली। प्रो० जे० एच० कैमरान ने लिवरपूल के एक मैकेनिक का विचित्र विवरण दिया है जिसे न कहीं चोट आई न कोई बीमारी हुई फिर भी वह एक सप्ताह तक चलने फिरने में असमर्थ रहा। कारण कि उसके एक जुड़वाँ भाई की टाँग एक दुर्घटना में टूट चुकी थी।

जुड़वाँ बच्चों में शारीरिक और मानसिक रूप से इतनी साम्यता होती है कि उन्हें एक ही व्यक्तित्व के दो बिम्ब कहा जाये तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। अनेक जुड़वाँओं में, वे कहीं भी रहें, एक-दूसरे तक अपने विचार और सम्वेदना सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है और कई बार इस क्षमता से बहुत लाभ होता देखा गया है।

यह समानता क्यों उत्पन्न होती है? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक गम्भीरता से शोध कर रहे हैं। अमरीकी विशेषज्ञ विसेंट का कथन है कि यदि युग्म जुड़वाँ बच्चों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म शारीरिक दृष्टि से समानता होती है तो इस बात की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है कि वे मानसिक दृष्टि से भी एक समान हैं। ऐसा क्यों होता है? इसके उत्तर में कहा गया है कि उन बच्चों का विकास गर्भाशय के भीतर ही एक-सी ही स्थितियों में होता है। उस समान स्थिति में पलने के कारण अलग-अलग देह धारी होते हुए भी उनके व्यक्तित्व तथा आचरण में समानता आ जाती है।

एक ही गर्भ में पलने वाले बच्चों के गुणसूत्र भी एक से होते हैं। कभी-कभी इन बच्चों का गर्भाधान और विकास अलग प्रकार के गुणसूत्रों से भी होता है। एक ही प्रकार के गुणसूत्रों वाले बच्चों को 'आइडेंटिकल ट्विनस' कहते हैं। ऐसे बच्चे समान लिंगी होते हैं अर्थात् या तो पुरुष होते हैं अथवा स्त्री। गर्भ में जिन बच्चों का विकास अलग-अलग गुण सूत्रों से होता हैं, उन्हें फैटरनल ट्विनस' कहते हैं। ऐसे बच्चों के लिंग भिन्न-भिन्न भी हो सकते हैं अर्थात् एक पुल्लिग हो सकता है और दूसरा स्त्रीलिंग। कोई आवश्यक नहीं कि ये भिन्न लिंग के हों ही सही' परन्तु ऐसी सम्भावना हो सकती है। 'आइडेंटिकल ट्विन्स' में इस तरह की सम्भावना बिल्कुल नहीं रहती।

लन्दन हास्पिटल के 'साइकीआर्टी इन्स्टीट्यूट' के डा० जेम्स शील्ड ने जुड़वां बच्चों पर काफी अनुसधान कार्य किया है तथा उनमें पाई जाने वाली समानताओं के वैज्ञानिक कारण प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार एक ही गुण सूत्रों से विकसित बच्चों के शरीर, स्वरूप, स्वभाव आदतों, व्यवहार, रुचियों और मस्तिष्कीय क्षमताओं में आश्चर्यजनक समानता होती है। इसका कारण दोनों का एक ही परिवेश में पलना और विकसित होना है। ऐसे बच्चे जब गर्भ में होते हैं तो गर्भिणी द्वारा किये जाने वाले आहार तथा उसकी दिनचर्या का दोनों पर समान रूप से प्रभाव पड़ता है। उन्हें गर्भ में एक ही प्रकार का पोषण मिलता है। वे एक ही श्वास लेते हैं। कुछ मिला कर समान परिस्थितियों एवं समान स्तर का पोषण मिलने के कारण ही उनमें समानताएं पाई जाती हैं।

वातावरण और परिवेश गर्भस्थ शिशु को ही नहीं मनुष्य को भी असाधारण रूप में प्रभावित करता है। इस सिद्धान्त या तथ्य को भारतीय मनीषियों ने भी समझा था तथा व्यक्ति के उच्च स्तरीय विकास हेतु संस्कारी व्यक्तियों के सत्सर्ग में रहने पर विशेष जोर दिया था। सत्संग का इसीलिए अत्यधिक महत्व बताया गया है कि उसमें जिन व्यक्तियों की संगति प्राप्त होती है, उनका तेजस् वातावरण में ऐसी सूक्ष्म विशेषताएं उत्पन्न करता है, जिससे मनुष्य की चेतना अनायास ही प्रभावित होने लगती है और आत्मिक विकास की दिशा में अग्रसर होती है।

शारीरिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताएं भले ही भिन्न-भिन्न हों, उनकी अलग-अलग सम्भावनाएं हों, किन्तु आत्मिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट सम्भावनाएं लिए हुए होता है। ये सम्भावनाएं तभी साकार होती हैं, जब उनके अनुरूप परिस्थितियां उपलब्ध हों। पानी से भाप बन जाने और वाष्प शक्ति के रूप में बड़े-बड़े यन्त्र चलाने की सम्भावना है। किन्तु पानी हर कहीं वाष्प शक्ति में परिणत नहीं होता। उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था बनानी पड़ती है। आत्मिक विकास की उच्च कक्षा में पहुँचने के लिए भी उच्चस्तरीय आत्माओं का सम्पर्क सान्निध्य आवश्यक है। वह सम्पर्क सान्निध्य चुम्बकीय विशेषता की तरह समीपवर्ती व्यक्तियों को अपने समान बना लेता है। अतः ऐसे व्यक्तित्वों के सम्पर्क में रहने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, जिनके सान्निध्य में आत्मिक क्षमताओं का विकास हो सके। वैसे वातावरण और परिवेश में रहने का अवसर प्राप्त करना चाहिए जो चेतना का उच्चस्तरीय विकास सम्भव बना सके।

—०—

> पानी में नाव रहती है परन्तु नाव में पानी का रहना उचित नहीं, इसी तरह साधक संसार में रह सकता है, परन्तु साधक के मन पर संसार छा जाय तो अच्छा नहीं।
>
> —रामकृष्ण परमहंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

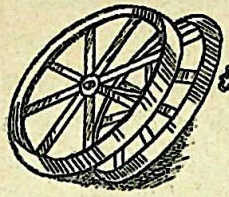

सौभाग्य की सार्थकता अनुशासन में

आत्मा के कौशल से शरीर का निर्वाह चलता है और शरीर के सहयोग से आत्मा अपना लक्ष्य पूरा कर पाता है। यह सम्भव तभी होता है जब दोनों के बीच उच्चस्तरीय सहयोग बना रहे। यदि इनमें से एक पक्ष भी असहयोग या विग्रह करे तो दूसरे पक्ष की ही नहीं, उसकी अपनी भी दुर्गति होगी। आत्मा को शरीर का पोषण और नियमन करना चाहिए तथा शरीर को आत्मा के निमित्त परिश्रम करने एवं अनुशासन पालने में तत्पर रहना चाहिए। यही है एक मात्र सुख-शान्ति का मार्ग।

संसार की पदार्थ सत्ता विराट् ब्रह्म का शरीर है। सद्उद्देश्यों का प्रतीक प्रतिनिधि परमात्मा इसका अधिपति है। दोनों के मध्य सहयोग रहना चाहिए। इसमें परमात्मा पक्ष ने सृष्टि को समर्थ और समुन्नत बनाये रहने में कहीं कोई चूक नहीं रहने दी है। उसके अनुदान और नियम पदार्थों को उपयोगी और प्राणियों को प्रसन्न रखने के निमित्त अपना काम बराबर करते रहते हैं। शरीर सत्ता के दल दलमें फँसी हुई जीव चेतना ही उच्छृंखलता बरतती है और ईश्वरीय अनुशासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करती है। यही है व्यापक असन्तुलन का एक मात्र कारण जिसने इस सुन्दर विश्व उद्यान में अनकानेक विग्रह एवं व्यवधान खड़े किये हैं।

इस सर्वभक्षी संकट का एक ही कारण है—चेतना और पदार्थ के मध्यवर्ती जीवन का आदर्श और स्वरूप विकृत हो जाना। यदि जीवनचर्या में आत्मा और सम्पदा का तालमेल बिठाये रहने की विवेकशीलता बनी रहती तो सर्वत्र सुख-शान्ति का ही वातावरण दीखता। अनिष्टों और संकटों से घटाटोप का दैवी प्रकोप नहीं, मनुष्य द्वारा अपने पैरों कुल्हाड़ी मारना कहना चाहिए। समापन भी आमन्त्रण देने वाले को ही करना होगा। विनाश की विभीषिकाएँ मनुष्य ने अपने चिन्तन और चरित्र में उच्छृंखलता की मात्रा बढ़ा कर ही की हैं। यदि विपत्तियाँ अरुचिकर या असह्य प्रतीत होती हों तो उसे ही अपने कदम वापिस लौटाने होंगे।

जीवन के दो पक्ष हैं—शरीर प्रकृति का प्रतिनिधि, आत्मा विराट् चेतना की अंशधर। दोनों एक दूसरे के साथ रहें उतना ही पर्याप्त नहीं, वरन् होना यह भी चाहिए कि दोनों एक-दूसरे की प्रगति तथा प्रसन्नता का भी ध्यान रखें। सान्निध्य ही नहीं, सहयोग भी चाहिए। सहयोग न होने पर जो बच रहता है उससे विसंगतियाँ ही उत्पन्न होती हैं। जेल में एक साथ अनेकों कैदी रहते हैं। मुर्गाफिर खाने में ढेरों लोग सटे बैठे रहते हैं. बाड़े में कितनी ही भेड़ें बन्द रहती हैं, पर साथ रहने से किसी का कुछ बनता नहीं, उलटी असुविधा ही होती है। आत्मा और शरीर दोनों साथ-साथ रहें तो, पर एक दूसरे से श्रेय साधन में रुचि न लें तो फिर उस उपेक्षापूर्ण निर्वाह से जीवनचर्या नीरस और निरर्थक ही बनती जाती है।

साथ रहने वाले यदि एक-दूसरे के विरुद्ध आचरण करें तब तो समझना चाहिए कि संकट ही खड़ा हुआ। चारपाई में खटमल, सिर में जुए, कमरे में मच्छर तथा घर में साँप, बिच्छू, चूहे. छछूँदर अति समीप रहते हुए भी अपने आश्रयदाता के लिए विपत्ति बन कर ही रहते हैं। अधिपति इन सहचरों से पिंड छुड़ाने की बात ही सोचता रहता है। शरीर और आत्मा के एक साथ रहने से प्राणी जीवित तो रहता है, पर सहयोग के अभाव में न कहीं आनन्द दीखता है और न प्रगति का आधार बनता है। उलटे खिन्नता. उद्विग्नता के कारण दोनों एक-दूसरे से पिण्ड छुड़ाने की बात सोचने लगते हैं।

आत्मा और काया को एक दूसरे का हित साधक बनकर रहना चाहिए और सच्चे अर्थों में दाम्पत्य-जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का आदर्श उपस्थित करना चाहिए। इसक्षेत्र में क्षणिक आकर्षण एवं उत्तेजन से बचना और चिरस्थायी हित साधन का ध्यान रखना होता है। अनावश्यक आवेश के प्रसंग आने पर समझदारों में से एक दूसरे आतुर को समझाता और रोकता है। उस समय बुरा लगने जैसे अप्रिय अवसर रहने पर भी विवेकवान दम्पत्ति अपने साथी को अहित कर मार्ग पर नहीं जाने देते। इसमें असहयोग या विरोध भी करना पड़ सकता है। यों ऐसे अवसर अपवाद स्वरूप ही कभी-कभी आते हैं। साधारणतया स्नेह सहयोग का आदान-प्रदान ही चलता रहता है। दूरदर्शिता अन्ततः हितकर ही होती है। उसे अपनाने पर जो सामयिक मनोमालिन्य उभरा था वह भी देर तक टिक नहीं पाता।

आत्मा का दूरगामी हित साधन काया करे इसके लिए उसका सहयोग आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों को क्रियान्वित करने में होना चाहिए। शरीर की प्रवृत्ति इस ढाँचे में ढलनी चाहिए कि उसकी ज्ञानेन्द्रियों को उच्चस्तरीय क्रिया-कलापों में रस आने लगे, उसकी कर्मेन्द्रिय ऐसा श्रम करने में उत्साह प्रकट करने लगे, साथ ही यदि कुसंस्कारों का दबाव अनुचित कृत्य करने में हो, तो उसकी प्रतिक्रिया आत्मा का अहित होने का ध्यान रखते हुए असहयोग अनुत्साह जैसी होनी चाहिए।

यह शरीर पक्ष का नीति निर्धारण हुआ। अब आत्मा की—चेतना की—जिम्मेदारी आती है। उसे काया को निरोग, बलिष्ट एवं दीर्घजीवी बनाये रहने के उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए ऐसा मार्ग दर्शन करना चाहिए जिसमें मात्र औचित्य भरी गतिविधियाँ ही अपनाई जाती रहें। ऐसा कुछ न बन पड़े जो तात्कालिक उत्तेजना की दृष्टि से तो आकर्षक लगे किन्तु परिणाम में काया को क्षीण दुर्बल बनाने लगे। बच्चे सभी को प्यारे लगते हैं, पर उनकी चित्र-विचित्र फरमाइशों को तत्काल पूरा करते, रहने के लिए कोई अभिभावक सहमत नहीं होता। जो उचित है, उतनी ही मात्रा में बच्चे का मन रखा जाता है। शेष के लिए इधर-उधर की बातों में लगा कर या स्पष्ट मना करके उसे बालहठ छोड़ने की स्थिति तक पहुँचा दिया जाता है। आत्मा की वरिष्ठता इसी में है कि वह शरीर रूपी पत्नी का आत्यन्तिक हित देखे उसकी अनगढ़ फरमाइशों के प्रति उदासीनता ही बरते। साथ ही जो उचित एवं आवश्यक है उसे पूरा करने में उत्साह दिखाने तथा सहयोग करने में तनिक भी त्रुटि न रहने दे।

काया को निरोग दीर्घजीवी बनाने का उत्तरदायित्व आत्मा को वहन करना चाहिए। इसके लिए चटोरी आदतें और बचकानी मचलनें यदि रोकनी पड़ें तो उसे विग्रह नहीं हित साधन ही समझा जाय। इतना ही नहीं देखना यह भी होगा कि उसे अपयश एवं तिरस्कार का भाजन न बनना पड़े। अकर्म करने से बदनामी सहनी पड़ती है और अप्रामाणिकता लद जाने से तिरस्कार बरसता है। स्वस्थ ही नहीं शरीर को यशस्वी एवं प्रामाणिक भी होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि चेतना काया को संचित कुसंस्कारिता के आधार पर अवांछनीय आचरण करने की छूट न दे। जहाँ औचित्य के लिए प्रोत्साहन देना आवश्यक है वहाँ यह भी कर्त्तव्य है कि अनुचित को निरस्त किया जाय। वैसे आग्रह से मीठे, कड़ुए ढंग से अस्वीकृत कर दिया जाय। ऐसी विवेकपूर्ण नीति अपनाने पर ही आत्मा का काया के लिए विवेकपूर्ण सदव्यवहार सध सकेगा। इसके विपरीत बालहठ पूरी करते रहने की अदूरदर्शिता अपनाने में सब प्रकार से अहित ही अहित है।

काया और आत्मा की घनिष्ठता, एकात्मता सर्व विदित है। दोनों साथ-साथ ही रहते हैं और मिल-जुल कर काम भी करते हैं। इतने पर भी एक त्रुटि ऐसी बनी रहती है जिसके कारण वह सहचरत्व उपयोगी न बनकर अनिष्ठकारक सिद्ध होता है। मनुष्य जीवन को सुरदुर्लभ कहा गया है। यह चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त मिलने वाला असाधारण सौभाग्य है। इसे सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है कि मानवी काया और आत्मा के मध्य उच्चस्तरीय हित साधन की दूरदर्शिता भी बनी रहे। इसके लिए कौशल एवं चातुर्य भर से काम नहीं चलता, वरन् दूरगामी परिणामों को महत्व दे सकने वाले और तदनुरूप निर्णय ले सकने वाले विवेक को जागृत रहना भी आवश्यक है। इसके अभाव में शरीर की क्रिया शक्ति और चेतना की विचार शक्ति भारी उछल-कूद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते रहने पर भी अन्ततः विपाक्त परिणाम ही उत्पन्न करती है।

कई मित्र ऐसे होते हैं जो अनजान में ही अपने साथी को शत्रु जैसी विपत्ति में फँसा देते हैं। शरीर और आत्मा की पारस्परिक सघनता रहते हुए भी उनके पारस्परिक व्यवहार ऐसे हो सकते हैं जिनमें मित्र द्वारा शत्रु जैसा व्यावहारिक होने के दुर्भाग्य को नग्न नृत्य करते देखा जा सके। यह जीवन समाप्त होने पर यदि नारकीय यन्त्रणा सहनी पड़ी—लौटकर फिर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ा, सुअवसर गँवा देने के लिए चिर-काल तक पश्चात्ताप की आग में जलना पड़ा तो यही कहा जायगा कि काया और आत्मा के विवाह की सार्थ-कता सिद्ध नहीं हुई। दोनों एक दूसरे के लिए मरते, खपते तो रहे, पर कोई किसी का हित साधन न कर सका। आत्मा की दुर्गति हुई तो शरीर भी कहाँ सुखी रह सकेगा। शरीर ने दुष्प्रवृत्ति अपनाकर अपना स्वास्थ्य और यश गँवाया तो उससे आत्मा भी गौरवशाली कहाँ हुआ? ऐसी दशा में मित्रता के साथ शत्रुता के व्यवहार को अमृत में विष घुल जाने की तरह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायगा।

अनचाहा अहित इसी को कहते हैं। सोते समय राजा की रखवाली करने वाले बन्दर ने चेहरे पर बैठी मक्खी को मारने के लिए तलवार चला दी। वह कहानी काल्पनिक भी हो सकती है पर आत्मा और काया के बीच दोनों पक्षों का एक दूसरे के प्रति ठीक ऐसा ही व्यवहार होता रहता है। दोनों की मित्रता प्रत्यक्ष है, पर परोक्ष की दृश्य सर्वथा विपरीत है। हेय प्रयोजन में समर्थन देने को भी लोक-व्यवहार में 'दोस्ती' ही कहा जाता है, पर इस प्रकार के गिरोह कुसंग भरे कहे जाते हैं और चाण्डाल चौकड़ी जैसे नाम से पुकारे जाते हैं।

अध्यापक अनुशासन सिखाते हैं और छात्रों का बचकानापन 'येन केन प्राकरेण' सुधारने का प्रयत्न निरन्तर जारी रखते हैं। बच्चे ऐसे गुरुजनों से कतराते तो अवश्य हैं, पर बड़े होने पर वे सोचते हैं कि अभिभावकों से भी बड़ा अनुदान उन्हें अध्यापक से मिला। अनुशासन बरतने पर जो अनखलगता और मन बिचकता है उसे स्वाभाविक दुर्बलता मानते हुए भी पहुँचना इसी निर्णय पर पड़ता है कि इस कटु प्रसंग की तरह विपन्नता से छूटने के लिए नीमगिलोय की तरह गले उतारा जाय।

व्यक्तिगत जीवन में जिस प्रकार दाम्पत्य जीवन में दूर-दर्शी सहकारिता की आवश्यकता है, उसी प्रकार समष्टि की सार्वभौम व्यवस्था में प्रकृति और पुरुष का उच्चस्तरीय सहयोग होना चाहिए। साधनों और हलचलों का ईश्वरीय नियन्त्रण में—आदर्शवादी अनुशासन में नियन्त्रित रहना चाहिए। आत्म पक्ष के अनुशासन में जन-जन को आबद्ध रखने का उत्तरदायित्व ऋषियों और मनीषियों के कन्धों पर आया है इसलिए इन्हें धरती पर ईश्वर का प्रति-निधित्व करने वाले देव-दूत कहा जाता है। निराकार भगवान की साकार मूर्ति परमार्थ परायण महामानवों को कहते हैं। चेतना के प्रतिनिधि वही हैं। उनका कर्त्तव्य है कि प्रकृति सम्पदा और प्राणियों की गतिशीलता में अनौचित्य का समावेश न होने दें।

प्रकृति तो जड़ है उसमें शक्ति और गुण है। इस विशिष्टता का अपना महत्व है। इतने पर भी यह उत्तर-दायित्व अन्ततः चेतना पर ही आता है कि वह इस प्रकार की व्यवस्था बनाये जिसमें पदार्थ सम्पदा का कहीं भी दुरुपयोग सम्भव न हो सके। प्रकृति का स्वभाव अधो-गामी है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ऊपर से नीचे को खींचती है। पानी ढलान की ओर बहता है। पतन की ओर मन चलता है। पशु पक्षी भी प्रजनन क्रिया में अनायास ही प्रवीण पाये जाते हैं। कठिन तो अभ्युदय की ऊँचाई की ओर उछलने वाली उत्कृष्टता ही पड़ती है। भारी उल्काएँ जमीन पर अनायास ही आ गिरती हैं किन्तु छोटे से राकेट को अन्तरिक्ष में उछालने के लिए बड़ी मात्रा में शक्ति, बुद्धि और सम्पत्ति लगानी पड़ती है। यह प्रकृति के उत्थान क्रम में अवरोध को तोड़ने की आदत को निरस्त करना ही है।

सान्निध्य एवं सहयोग का सौभाग्य तभी सराहा जा सकता है, जब उसके पीछे दूरदर्शिता, विवेकशीलता हित साधना के लिए अपनाया गया अनुशासन भी सम्मिलित हो। इसी तथ्य को इन दिनों गम्भीरतापूर्वक समझने और समझाये जाने की आवश्यकता है। ★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रुता जब हार गयी

कटक में उन दिनों जोरों से हैजा फैला हुआ था। उड़िया बाजार में इसका सबसे अधिक जोर था। हैजा जैसे रोग से ग्रस्त व्यक्ति की देखभाल करने में उसके सम्बन्धी कतराते थे। कहीं यह रोग उन्हें भी न लग जाए, इस डर से वे रोगी को अपने भाग्य पर छोड़ देते थे। पर इतनी मात्र सतर्कता से यह रोग कहाँ पीछा छोड़ने वाला था। बीसियों लोगों को बुरी तरह मरते देख कुछ किशोर बच्चों का हृदय पसीजा और उन्होंने रोगियों की देखभाल के लिए दल बनाये। ये दल रोग पीड़ित इलाकों में जाते, वहाँ सफाई वगैरा का प्रबन्ध करते तथा बीमारों को दवा आदि बाँटते। इन किशोरों के अग्रणी नेता थे नेताजी सुभाषचन्द बोस। वे भी उन दिनों इसी आयु के थे।

उनके नेतृत्व में सेवा दल के मदस्य रोग पीड़ितों की देखभाल करने उन्हें दवादारू और पथ्य बाँटते तथा घर-घर में कुशल समाचार पूछते। लेकिन यह काम उसी मोहल्ले में रहने वाले एक गुण्डे को अच्छा नहीं लगा। नाम था उसका हैदर खाँ। उसे मालूम हुआ कि सेवा-दल के मदस्य किशोर बाबूपाड़ा के रहने वाले हैं और उस मोहल्ले में अधिकांशतः वकील रहते हैं, जिनके कारण उसे कई बार जेल जाना पड़ा था। इसीलिए वह बाबू-पाड़ा में रहने वालों को अपना दुश्मन समझने लगता था और इन किशोरों को भी शत्रुता के भाव से देखता था।

हैदर खाँ ने मोहल्ले वालों को भड़काना शुरू किया कि ये सब धनियों के लड़के हैं और इन्हें अपने मोहल्ले में नहीं आने देना चाहिए। उड़िया बाजार के लोग हैदर खाँ के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित थे इसलिए उन्होंने उसकी यह बात अनुचित होते हुए भी मान लेने में ही भलाई समझी और सेवा-दल के सदस्यों से कोई सहायता लेने से इनकार करने लगे। दल के स्वयंसेवकों को भी यह बात पता लगी और वे मोहल्ले वालों की बात का बुरा न मानकर अपना काम चुपचाप करते रहे।

संयोग की बात। हैदर द्वारा लड़कों को धमकाये जाने के दिन से बमुश्किल एक सप्ताह भी नहीं बीता कि उसी के लड़के को हैजा हो गया। वह डाक्टर की तलाश में इधर से उधर न जाने कहाँ-कहाँ भटका, परन्तु सभी डॉक्टर किसी न किसी रोगी की चिकित्सा में व्यस्त थे।

निराश होकर जब वह वापिस अपने घर आया तो उसने देखा कि वे ही लड़के जिनको उसने पाँच-सात दिन पहले इस मोहल्ले में आने से डाँटा था, उसके घर की सफाई में लगे हुए हैं। एक किशोर उसके पुत्र द्वारा की हुई उल्टी साफ कर रहा है और दूसरा उसे दवा दे रहा था।

यह दृश्य देखकर हैदर स्तब्ध खड़ा रह गया। उसके भीतर का गुण्डापन पिघलने लगा और आँखों की राह बहने ही वाला था, कि बोला, 'यह क्या लड़को ?' मैंने तो तुम्हें कुछ दिन पहले डाँटा था। तुम्हें उसका बुरा नहीं लगा। तुम डरे नहीं ? तुमने सोचा नहीं कि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ और तुम्हें फूटी आँख भी देखना पसन्द नहीं करता ?'

सुभाष बाबू जो हैदर के बेटे को दवा दे रहे थे, बोले, 'इन सब बातों पर सोचने का हमें समय ही नहीं मिला। हम तो अपने भाई की सेवा में लगे हैं। देखते नहीं हो यह कितनी पीड़ा भोग रहा है ? ये सवाल पूछने के बजाय बेहतर है कि हमारी मदद करो।'

हैदर को आशा भी नहीं थी कि उसे यह उत्तर मिलेगा। वह तो समझ रहा था कि लड़कों को पता नहीं है कि यह मेरा घर है और वे भूल से यहाँ चले आये हैं। पर यह तो अब पता चला कि उन्होंने उसकी बातों को जरा भी गम्भीरता से नहीं लिया था उसका हृदय पश्चात्ताप से भर उठा और वह बोला, 'मुझे माफ करना बच्चो !'

हैदर का लड़का सुभाष बाबू के दल की परिचर्या से थोड़े ही समय में स्वस्थ हो गया और कहना नहीं होगा कि हैदर की जीवन दिशा ही बदल गई। ★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की विशेषता यह है कि वह अपनी स्थिति पर सन्तुष्ट नहीं रह सकता। मनुष्येत्तर जीव प्रकृति प्रेरणाओं के अनुरूप ढर्रे का जीवन-यापन करते हुए प्रायः वैसे ही बने रहे जैसा कि आदिम युग में थे। दूसरी ओर मनुष्य ने असामान्य गति से प्रगति की है। बुद्धि, साहस, पुरुषार्थ के बलबूते उसने पर्वतों के शिखरों को भी रौंदा और अन्तरिक्ष में छलांग लगायी है। खोज के प्रति अभिरुचि, अनवरत जिज्ञासा का अवलम्बन एवं साहस का सम्बल पाकर प्रगति क्रम आगे ही बढ़ता गया है। फलतः उसने दुस्साहस भरे ऐसे काम कर डाले जो कभी असम्भव एवं दुस्तर समझे जाते रहे होंगे।

'ऐडवेंचर' युक्त खोजों का इतिहास यों ही सम्भव न हुआ। वह अपने साथ साहस एवं बलिदान की रोमांचक दास्तान जोड़े हुए है। पृथ्वी का सर्वाधिक रहस्यमय क्षेत्र उत्तरी ध्रुव कभी उतना ही अविज्ञात था जितना कि आज चेतन जगत एवं उसकी चमत्कारी सामर्थ्य। किन्तु दुस्साहसियों ने अपनी जान को जोखिम में डालकर भी वहाँ तक पहुँचने एव खोज निकालने का बीड़ा उठाया। फलतः उत्तरी ध्रुव के विषय में रहस्यमय जानकारियाँ मिल पायीं। खोजियों को कितने कष्ट झेलने पड़े, कितनों को प्राण गँवाने पड़े, यह खोज के इतिहास को पढ़ने पर पता चलता है।

सर्वप्रथम डेन्मार्क निवासी 'वीनस-बेरिंग ने ध्रुव प्रदेशों की खोज का संकल्प लिया। सन् १७२५ में उन्होंने रशिया के आर-पार पैदल ही यात्रा की। यह यात्रा ५ हजार मील लम्बी थी। बेरिंग अपने छोटे से जहाज के सहारे प्रशान्त महासागर से साइबेरिया और अलास्का होकर 'जलडमस' मध्य को पार कर गया। उसके नाम पर ही इस छोटे से द्वीप का नाम जलडमस मध्य बेरिंग पड़ा है। अलास्का ध्रुव प्रदेश की खोज के फलस्वरूप अमेरिकी खण्ड पर सोने से भरा विशाल प्रदेश रशिया को मिला जिसे बाद में अमेरिका ने खरीद लिया। बेरिंग ने अलास्का एवं साइबेरिया से उत्तर पूर्व किनारे के ध्रुव प्रदेश में अपनी खोज जारी रखी। सन् १७४१ में तीसरी यात्रा में उनका जहाज बर्फ की चट्टानों के बीच दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उन्हें दम तोड़ना पड़ा।

ब्रिटेन के एडवर्ड पेरी ने १८१९ में उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने का निश्चय किया किन्तु बर्फ के पहाड़ों एवं बर्फीली हवाओं के कारण उन्हें अपना निश्चय बदलना पड़ा। ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ समय बाद घोषणा हुई कि जो भी व्यक्ति उत्तर में ८९ अंश तक पहुँच कर समुद्री मार्ग खोज निकालेगा उसे पाँच हजार पौण्ड का पारितोषिक दिया जायेगा। उन्नीसवीं सदी के पूर्व इन्जन से चलने वाले जहाजों की सुविधा न थी। इसके निर्माण से ब्रिटिश सरकार को आशा बँधी। लकड़ी से बने एवं पालों के सहारे चलने वाले अधिकांश जहाज बर्फ की चट्टानों से युक्त दुर्गम मार्ग एव तूफानों के थपेड़ों से टकराकर नष्ट हो जाते थे। मोटर इन्जिन के आविष्कार से इस कठिनाई का हल निकला। ब्रिटिश नौ सेना के 'एरवस एवं टेटर' नामक दो जहाज आधुनिक यन्त्रों से सुसज्जित होकर सर फ्रेंकलिन के नेतृत्व में उत्तरी ध्रुव की खोज में चल पड़े। इस जहाज का वजन साढ़े तीन हजार टन था तथा उन सारी सुविधाओं से युक्त था जो यात्रा के लिए आवश्यक थीं। १२९ कुशल नाविकों से युक्त जहाज की भव्य विदाई ब्रिटिश नागरिकों ने की।

फ्रेंकलिन को इसके पूर्व दो उत्तरी-यात्राओं का अनुभव भी प्राप्त था। किन्तु नियत को प्रकृति के इस दुर्गम प्रदेश पर छेड़छाड़ करना सम्भवतः स्वीकार नहीं था। विशालकाय जहाज बर्फ के बीच फँस गया। नाविकों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महित फ्रेंकलिन को पहला जाडा वर्फ की कैद में ही व्यतीत करना पड़ा। पोषक आहार के अभाव में अनेकों नाविक 'स्कर्वी' नामक रोग से मरने लगे। दूसरे जाड़े में फ्रेंकलिन को भी अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। तीसरी ठंड आने तक १०६ नाविक जीवित थे किन्तु दोनों जहाजों के बर्फ के बीच दबकर पिस जाने से उनका जीवन भी मौत के झूले में झूल रहा था। खुराक समाप्त हो गई और मछली आदि के शिकार के लिए कोई साधन न था। फलस्वरूप नाविकों के समक्ष अनजान हिमाच्छित प्रदेश में यात्रा करने के अतिरिक्त कोई मार्ग अवशेष न रहा। किन्तु रक्त को भी जमा देने वाली ठंड एवं भोजन के अभाव के कारण सभी नाविकों ने दम तोड़ दिया। ब्रिटिश सरकार ने इनकी टोह लेने के लिए एक दूसरा दल 'जान राई' के नेतृत्व में भेजा जिन्हें तीस नाविकों के शव बर्फ में जमे हुए मिले।

सन् १८७९ में अमेरिकी कप्तान 'द लांग' तीन नाव, छः बर्फ गाडियाँ, २३ कुत्ते एवं ३३ प्रशिक्षित नाविकों को लेकर उत्तरी ध्रुव की खोज में चल पड़े। साइबेरिया से होकर वे गुजर रहे थे इतने में बर्फ का तैरता हुआ विशाल पर्वत उनके साथियों को विरुद्ध दिशा में नाव सहित बहा ले गया। फलतः एक नाव साइबेरिया के दूसरे किनारे पर जा पहुँची। 'दूसरी' रसद सहित डूब गयी। तीसरी में 'द लांग' अपने कुछ साथियों सहित साइबेरिया की 'लेना' नदी में जा पहुँचे। सभी हिमदंश रोग से पीडित हो गये और अन्ततः मौत की गोद में जा पहुँचे दूसरे खोजी दल को 'द लांग' की लिखी १४० दिनों की प्रवास डायरी प्राप्त हुई जो आगे यात्रा करने वालों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुई।

असफलता एवं सफलता की कड़ियाँ परस्पर एक-दूसरे से आबद्ध हैं। असफलताएँ भी अपने साथ कितने ही अनुभव एवं प्रेरणाएँ छिपाये रहती हैं तथा दूसरों को मार्गदर्शन देने में सक्षम होती हैं। ध्रुव प्रदेशों तक पहुँचने में ये दुस्साहसी असफल तो रहे किन्तु उनका त्याग, बलिदान से भरा पुरुषार्थ निरर्थक नहीं गया। दूसरे खोजियों के लिए उनके अनुभव वरदान सिद्ध हुए तथा पथ-प्रदर्शन में समर्थ रहे। कैप्टिन द लांग की प्राप्त डायरी नार्वे के डा० नानसन की सफलता का कारण बनी। डायरी में वर्णित अनुभवों से डा० नानसन ने निष्कर्ष निकाला कि उत्तरी ध्रुव के आसपास बर्फ की पट्टी है। अतएव ऐसे जहाजों का निर्माण किया जाना चाहिए जो बर्फ जमने पर उसके बीच पिस जाने के स्थान पर सुरक्षित—ऊपर उठकर सतह पर आ जाय। जिस प्रकार साइबेरिया के किनारे से लकड़ी के लट्ठे प्रवाह के साथ बहकर ग्रीनलैण्ड के किनारे पहुँचते हैं, उसी प्रकार जहाज भी उत्तरी ध्रुव पर क्यों नहीं पहुँच सकते, इन विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने 'फ्राम' नामक एक ऐसे जहाज का निर्माण कराया, जो उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और जहाज को बर्फ पर फिसलने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया। पौने दो वर्ष बाद जहाज ७८ अंश उत्तर अक्षांश के पास जा पहुँचा। 'नानसन' ने अब उत्तरी ध्रुव के लिए पैदल यात्रा करना अधिक उपयुक्त समझा। अपने साथी 'शानमार जोहानसन' को लेकर वह चल पड़ा। यह बहुत ही दुस्साहस भरा कदम था। मार्च १८९५ में यह यात्रा आरम्भ हुई तथा ८ अप्रैल को ८६ उत्तर अक्षांश १४ मिनट तक जाकर एक ऐतिहासिक कीर्तिमान स्थापित करते हुए समाप्त हुई। अब गरमी के कारण बर्फ पिघलनी आरम्भ हो गई। पानी पर तैरते, बर्फ से होकर वापस लौटा जा सकता था किन्तु देरी हो जाने के कारण बर्फ के अभाव में लौटना कठिन था। फलस्वरूप जाड़े की राह देखने तक फ्रांन्ज जोसेफ लैंड नामक टापू पर पत्थर की झोंपड़ी में समय व्यतीत करना पड़ा। आठ माह व्यतीत करने के बाद पुनः वे वापस लौटे। 'नानसन' उत्तरी ध्रुव से मात्र २२४ समुद्री मील दूर रहे। इस प्रकार इनकी यात्रा एवं अनुभवों ने आगे का मार्ग प्रशस्त किया।

ऐतिहासिक सफलताओं में किसी व्यक्ति विशेष का एकांगी पुरुषार्थ काम नहीं करता। उनमें अनेकों का योगदान होता है। सफलता का श्रेय भले ही किसी को मिले उपयोग भले ही कोई करे, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे महान उपलब्धियाँ अनेकों के सहयोग से ही सम्भव हो सकीं।

पिछले खोजियों का पुरुषार्थ निरर्थक गया, यह नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा जा सकता। एक के अनुभव ने दूसरे का मार्गदर्शन किया तथा आगे बढ़ाया। उत्तरी ध्रुव की खोज का अन्तिम श्रेय पाया अमेरिका के रावर्ट पियरी एवं उनके निग्रो साथी 'मेथ्यु हेनसन' एवं दो एस्किमों ने। पियरी ने लगभग अपना सम्पूर्ण जीवन ही उत्तरी ध्रुव की खोज में लगा दिया। पिछले खोजियों की असफलताओं का अध्ययन बारीकी से पियरी ने किया। लोहे से विनिर्मित जहाज, छः साथियों, १७७ एस्किमों एवं १३३ कुत्तों के साथ वह जुलाई १९०८ को दुस्साहसी अभियान पर चल पड़ा। १ अप्रैल १९०९ को वह उत्तरी ध्रुव से मात्र १३३ मील दूर था। अन्य साथियों को वहीं छोड़कर वह एक साथी हेनसन तथा चार अनुभवी एस्किमों को लेकर आगे बढ़ा। प्रकृति ने भी इस दुस्साहसी का साथ दिया। मौसम अनुकूल था। ६ अप्रैल १९०९ को वह प्रातः ध्रुव से मात्र ३ मिनट के अन्तर पर अर्थात ८९ अक्षांश ५७ मिनट पर जा पहुँचा। उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। २३ सौ वर्ष पूर्व से ध्रुव प्रदेश की जो खोज आरम्भ हुई थी उसका अन्तिम श्रेय उसे मिला।

दुस्साहस भरी दो यात्राएँ एवं तद्नुरूप सफलताएँ इस तथ्य की ओर इंगित करती हैं कि मानवी साहस एवं पुरुषार्थ के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। छोटे-मोटे अवरोधों के समक्ष सिर झुका लेने एवं अपने लक्ष्य को छोड़ बैठने वालों के लिए ये प्रसंग प्रेरणा देते तथा बताते हैं कि—"परिस्थितियों के समक्ष कभी हार न मानो लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अपना प्रयास जारी रखो।"

दक्षिणी ध्रुव की खोज का इतिहास उत्तरी ध्रुव की तुलना में और भी अधिक रोमांचक एवं दुस्साहस से भरा हुआ है। दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचना तो और भी अधिक कठिन था। अठारवीं सदी के सातवें दशक में ब्रिटेन का जेम्स कुक दक्षिणी ध्रुव की खोज करते ७० अक्षांश दक्षिण तक जा पहुँचा। यह स्थान लक्ष्य से १५० मील दूर था किन्तु बर्फ के विशालकाय शिखरों के कारण 'जेम्स' आगे नहीं बढ़ सका बर्फ के तूफानों में ही उसे दम तोड़ना पड़ा। सन् १९०१ में जर्मन के कमाण्डर रावर्ट स्काट अर्नेस्ट हेनरी शेकलटन नामक एक आयरिश युवक को साथ लेकर दक्षिणी ध्रुव की ओर चला किन्तु आपसी मतभेद हो जाने के कारण दोनों को दो दलों में विभक्त होना पड़ा। शेकलटन अपने दस्ते को साथ लिए दक्षिणी ध्रुव की १०० मील दूर तक पहुँच गया। किन्तु ११ हजार ६ सौ फुट ऊपर तथा शून्य से ५६ अंश नीचे भयंकर ठंड के कारण आगे बढ़ना सम्भव न हो सका। इस बीच बचा हुआ भोजन भी समाप्त हो चला था। फलस्वरूप उसने वापस लौटना अधिक उपयुक्त समझा। उसके द्वारा प्राप्त की गई जानकारियों से प्रो० डेविड के नेतृत्व में एक खोजी दल दक्षिण चुम्बकीय ध्रुव तक जा पहुँचा।

दूसरी ओर शेकलटन के साथ दक्षिणी ध्रुव की खोज पर निकला स्काट अपने अभियान में लगा रहा। ध्रुव से १५० मील दूरी पर स्काट चार के अतिरिक्त अन्य साथियों को वहीं छोड़ कर आगे बढ़ा। बर्फ गाड़ी खींचने में अत्याधिक श्रम लगने एवं समुचित पोषण के अभाव के कारण बीमार पड़ गये। तथा मृत्यु के ग्रास बन गये।

इन्हीं दिनों नार्वे का 'आमुंडसन नामक नाविक जो कभी 'नानसन' के साथ उत्तरी ध्रुव की यात्रा कर चुका था, उसने दक्षिणी ध्रुव के खोज का संकल्प लिया। उसके विगत अनुभव काम आये। अपने दल के साथ वह १४ दिसम्बर १९११ को दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचने में सफल रहा और 'नार्वे' का झंडा फहरा दिया। इसके बाद तो वहाँ आना-जाना सुगम हो गया।

इन दुर्गम प्रदेशों की कठिन यात्राएँ जहाँ मानवी साहस एवं पुरुषार्थ की असाधारण महिमा का प्रतिपादन करती हैं वहीं दूसरी ओर इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। जड़ प्रकृति की तुलना में चेतन सूक्ष्म जगत कहीं अधिक 'एडवेंचरस्'—रहस्यमय, शक्ति-सामर्थ्य से युक्त है। जितना पुरुषार्थ एवं दुस्साहस प्रकृति के 'ऐडवेंचर' को खोजने एवं जानने में किया जाता है उतना ही यदि चेतन जगत के लिए भी किया जा सके ता इतना कुछ जाना एवं प्राप्त किया जा सकता है, जिसे करतलगत कर और कुछ जानने एवं पाने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकृति स्वयं आपकी चिंता करती है

प्रगति चाहे भौतिक हो या आत्मिक, स्वस्थ शरीर उसके लिए सर्व प्रथम आवश्यक है। शरीर यदि अस्वस्थ हो, रुग्ण हो, दुर्बल हो तो भौतिक प्रगति के लिए आवश्यक प्रयास करना सम्भव नहीं हो सकेगा। थोड़े से ही श्रम में शरीर थक जाएगा और बहुत बार तो श्रम करने योग्य भी स्थिति नहीं रह जाएगी। इसी प्रकार आत्मिक प्रगति के लिए भी शरीर का स्वस्थ, नीरोग होना आवश्यक है। जितनी भी साधनाएँ की जाती हैं, आत्मिक विकास के लिए, जितने भी उपक्रम करने पड़ते हैं वे शरीर के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। अस्वस्थ शरीर से साधना के लिए बैठना तक सम्भव नहीं रह जाता। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है, 'शरीर माद्य खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् वास्तव में शरीर ही सबसे पहला धर्म साधन का आधार है। यौगिक क्रियाओं से लेकर परमार्थ उपकार और लोक-मंगल के कार्यों तक में शरीर का ही उपयोग करना पड़ता है।

निश्चित ही शरीर सब कुछ नहीं है। चेतना का महत्व उससे हजार गुना अधिक है, परन्तु ऐसा भी नहीं है कि शरीर एकदम उपेक्षणीय है और उसे स्वस्थ, स्वच्छ, सुव्यवस्थित रखने के लिए कुछ नहीं किया जाना चाहिए। ऊपर की मंजिल में प्रवेश करने के लिए सबसे अन्तिम सीढ़ी पर चढ़ना पड़ता है, परन्तु सबसे अन्तिम सीढ़ी तक तभी पहुँचा जा सकता है जब पहली सीढ़ी को पार कर लिया गया। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए शरीर प्राथमिक सीढ़ी है।

शरीर का महत्व इसलिए है कि उसमें आत्मा निवास करती है। उच्चस्तरीय विकसित आत्मा ही किसी व्यक्ति को महामानव या देवमानव बनाती है, परन्तु उन्हें महान बनाने वाले कृत्य शरीर द्वारा ही सम्पन्न करने होते हैं। किसी व्यक्ति का प्रथम परिचय शरीर के प्रति उसके व्यवहार से ही लगता है। सम्भाषण, वार्त्तालाप, सम्वाद, विचार-विमर्श और क्रिया-कलापों का परिचय तो बाद में चलता है, पहले उसका व्यक्तित्व शरीर के माध्यम से ही सामने प्रस्तुत होता है और वह अपने शरीर को जिस ढंग से संवार, सम्हाल कर रखता है, जैसा स्वच्छ सुथरा दिखाई देता है वैसा ही उसके व्यक्तित्व का प्रथम प्रभाव पड़ता है। कहने का आशय यह कि मानवीय सत्ता का प्रथम कलेवर उसका अपना शरीर ही है और वह जीवन को तभी उद्देश्यपूर्ण ढंग से सार्थक बना सकता है जबकि उसका शरीर स्वस्थ हो।

कहा जा चुका है कि उत्तम स्वास्थ्य के बिना न तो कोई व्यक्ति भौतिक सुख प्राप्त कर सकता है या भोग पाता है तथा न ही कोई आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेद प्रणेता ऋषियों ने इसीलिए कहा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबका साधन शरीर ही है। संसार के भौतिक सुखों का आनन्द शरीर के द्वारा ही उठा पाना सम्भव है तो लोकसेवा, परोपकार आदि करने का एकमात्र साधन भी शरीर ही है। शरीर द्वारा ही योगीजन यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं और सर्वोत्तम उपलब्धि, मानव जीवन की सार्थकता मोक्ष शरीर से किये गए कर्मों द्वारा प्राप्त करते हैं। इसीलिए महर्षि चरक ने कहा है—

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीर मनुपालयेत ।
तद्भावे हि भावानां सर्वभावः शरीरिणाम् ॥

अर्थात्—"सबसे पहले शरीर रक्षा, स्वास्थ्य रक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए क्योंकि देहधारियों के लिए अच्छे स्वास्थ्य के अभाव में सारा संसार ही अभावमय है।" प्रश्न उठता है अच्छा स्वास्थ्य किसे कहते हैं ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि किसी रोग का न होना ही अच्छा स्वास्थ्य है। शरीर के साथ-साथ मन का निरोग होना भी आवश्यक है। शरीर स्वस्थ तभी रह सकता है जब मन भी स्वस्थ हो। इसे यों भी कहा जा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता है कि मन यदि रुग्ण हो तो शरीर भी बीमार पड़ जाता है। अन्यथा प्रकृति ने शरीर का निर्माण इस कुशलता के साथ किया है कि वह छोटे-मोटे झटके तो यों ही पार कर जाता है और उनसे जरा भी प्रभावित नहीं होता। प्रभावित तब होता है, जब मन भी रुग्ण हो या विकारग्रस्त होता है।

कभी कहा जाता था कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है, किन्तु अब यह मान्यता बदल गई है और कहा जाने लगा है कि मन यदि स्वच्छ और स्वस्थ हो तो शरीर के अंग अवयव इतने समर्थ और पुष्ट होते हैं कि वे आने वाले विकारों का स्वयं ही उपचार कर लेते हैं। प्रसिद्ध शरीर विज्ञानी डा० एलवर्ट टोके ने लिखा है "कि निश्चित ही देह में अनेक सूक्ष्म और नाजुक भाग हैं और यह भी सही है कि शरीर की सामान्य क्रिया में थोड़ा-सा, रत्तीभर परिवर्तन भी बहुत बड़ा प्रभाव डाल सकता है किन्तु उससे ज्यादा सही यह है कि शरीर में इन दुष्प्रभावों को रोकने, विघटन का प्रतिरोध और रोगवाही कारणों को नष्ट करने की अद्भुत क्षमताएँ हैं।"

डा० एलवर्ट टोके ने अपनी पुस्तक 'ह्यूमन वॉडी एण्ड हाऊ इट वर्क्स' पुस्तक में शरीर की इस अद्भुत क्षमता पर विस्तार से प्रकाश डाला है। रोग के वाहक कारणों को शरीर में प्रवेश करने से सर्व प्रथम तो त्वचा ही रोक देती है। बहुत से रोग-वाहक ऐसे होते हैं जो रोमकूपों से भी बारीक होते हैं तथा त्वचा के छिद्रों से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे वाहकों से लड़ने और उन्हें नष्ट करने के लिए त्वचा के नीचे मृत कोशिकाओं की अभेद्य सुरक्षा पंक्ति तैयार रहती है, जो किसी सुदृढ़ दुर्ग की भाँति उन्हें प्रवेश करने से रोक देती है।

रोगाणु यदि शरीर के खुले अंगों अर्थात् मुख या नासा गुहाओं से प्रवेश करते हैं तो वहाँ भी प्रकृति ने उन्हें भी रोकने के लिए रक्षा चौकियाँ बिठा रखी हैं और ऐसा जाल बिछा रखा है कि बेचारे उससे बच कर आगे बढ़ ही नहीं सकते। उदाहरण के लिए यदि ये नासिका गुहा में प्रवेश भी कर जाए तो कुछ आगे चल कर ऐसी श्लेष्मिक झिल्लियों का सामना करना पड़ता है जिनसे एक तरल चिपचिपा द्रव स्रवित होता रहता है। अधिकांश उसी स्राव में फँस कर रह जाते हैं और आगे नहीं बढ़ पाते। इस पर भी कोई धृष्ट, धूर्त रोग कीट इस स्राव से बचकर आगे बढ़ जाने में सफल हो जाता है तो श्वास नली में नासिका गुहा से भी अधिक कड़ी सुरक्षा व्यवस्था रहती है। वहाँ भी झिल्लियाँ और श्लेष्मा की दीवारें होती हैं इसके अतिरिक्त लहराते हुए रोमाभ भी होते हैं जो उनका रास्ता रोक लेते हैं। ये रोमाभ न केवल उन्हें रास्ते में रोक लेते हैं बल्कि उन्हें वापिस बाहर जाने के लिए भी विवश कर देते हैं।

इतने पर भी कोई विजातीय जीवाणु यदि आगे बढ़ने में सफल हो जाते हैं तो उनके लिए आहार नली और पाचन क्षेत्र में ऐसा मारक अम्लीय द्रव वहाँ विद्यमान रहता है जो उनके लिए विष का काम करता है और अधिकांश जीवाणु इस अम्लीय घातक विष से मर जाते हैं। तिस पर भी यदि कोई जीवाणु बच जाता है तो वे धकेल कर पाचन संस्थान के उस क्षेत्र में फेंक दिये जाते हैं जहाँ उनके लिए इधर-उधर हाथ-पैर मार कर शरीर दुर्ग में अस्त-व्यस्तता फैलाने का कोई अवसर नहीं रहता और उन्हें मल-मूत्र के साथ वापिस उसी संसार में पहुँचना पड़ता है जहाँ से कि वे आये थे।

चोट पहुँचने, कीड़ों के काटने, घाव लग जाने के कारण इन रोगाणुओं को शरीर दुर्ग में प्रवेश करने तथा वहाँ गड़बड़ी फैलाने का अच्छा अवसर मिलता है। किन्तु शरीर का सुरक्षा विभाग वहाँ इतनी तत्परता का परिचय देता है कि वहाँ भी इनकी दाल नहीं ही गल पाती। थोड़ी बहुत दूर तक वे घुसपैठ भले ही करलें किन्तु तब तक शरीर का रक्षा विभाग वह अमुक पहुँचा देता है जो उन्हें मार भगाता है। जिस स्थान पर चोट लगती है या घाव होता वहाँ रक्त में विद्यमान न्यूट्रोफिल ऊतक श्वेत कण तथा मोनोसाइट, जलसेना, थलसेना, नभसेना की भाँति घुरन्त सीमा पर पहुँचते हैं और इन रोगाणुओं के साथ द्वन्द्व युद्ध करने लगते हैं। इनमें से श्वेताणु तो इन रोगाणुओं का सीधे भक्षण ही कर जाते हैं।

जिस स्थान पर चोट लगती है या घाव होता है वहाँ सूजन इसी कारण आ जाती है कि वहाँ तीनों तरह के रक्षक बड़ी संख्या में आ जमा होते हैं। रुधिर के श्वेतकण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो सीधे इन रोगाणुओं का भक्षण करने लगते हैं, परन्तु न्यूट्रोफिल जीवाणुओं से मरणासन्न तक संग्राम करते हैं। या तो वे जीवाणुओं को नष्ट कर डालते हैं अथवा लड़ते-लड़ते स्वयं वीरों की तरह मर जाते हैं। इन मरे हुए रक्षकों और आक्रामक जीवाणुओं के शव ही पीव और मवाद के रूप में बाहर निकलता है।

कई बार इस युद्ध में आक्रमणकारी जीवाणु जीत जाते हैं और अन्दर के क्षेत्र में घुसपैठ कर जाते हैं। उस स्थिति में ये अगला आक्रमण लक्षिकावाहिनियों पर करते हैं। या कि वही इनके सामने होती है। लक्षिकावाहिनियों के पथ पर लक्षिका ग्रन्थियों के रूप में पहले से ही ऐसी व्यवस्था रहती है कि वे बिना कोई युद्ध चुनौती दिए चुपके से उन्हें कैद कर लेती हैं। इन ग्रन्थियों में बाह्य विजातीय तत्वों के लिए बड़ी-बड़ी छलनियाँ होती हैं। आगे प्रवेश करने के लिए जीवाणुओं को उन्हें पार करना ही होता है और ये छलनियाँ इतनी सम्वेदनशील होती हैं कि किसी भी बाह्य तत्व या विजातीय कणों के आते ही उन्हें तुरन्त कैद कर लेती हैं। इन कैदियों को उनके निश्चित निर्धारित स्थान पर ले जाया जाता है और जब इन्हें कारावास दिया जाता है तो प्रायः जलशोथ की शिकायत हो जाती है, जो सामान्य उपचार से ही ठीक हो जाती है।

यह रक्षा व्यवस्थाएं ही आमतौर पर विजातीय द्रव्यों, रोगों के उत्पन्न करने वाले कारणों से निबटने के लिए पर्याप्त है, परन्तु प्रकृति इतनी होशियार है कि उसने एक अतिरिक्त व्यवस्था अलग से कर रखी है, जो इन व्यवस्थाओं के असफल हो जाने पर काम आती है। यह व्यवस्था शरीर में बहने वाले रुधिर के कण-कण में व्याप्त है।

कभीकभार कोई विशेष जीवाणु या उनके विषाक्त उत्पाद रक्त पर पहली बार आक्रमण करते हैं तो उसका प्रतिपिण्ड तुरन्त नहीं बन पाता। उस स्थिति में रोग उत्पन्न हो जाता है किन्तु रोग की अवस्था में भी प्रतिपिण्ड जब बनने लगते हैं तो इतनी तीव्रता से बनते हैं कि वे रोग को नष्ट करके ही मानते हैं। जब रोग समाप्त हो जाता है तो यह इस बात का प्रतीक है कि रक्त में उस विजातीय द्रव्य के प्रतिपिण्ड बनने की क्षमता आ गई है और दुबारा रोग के उत्पन्न होने पर प्रतिपिण्ड बनने में कोई विलम्ब नहीं होगा।

इस प्रकार प्रकृति ने रोगों से बचने, उनसे लड़ने और उन्हें उत्पन्न करने वाले कारणों को नष्ट करने की क्षमता या व्यवस्था स्वयं ही उत्पन्न कर ली है। इसके उपरान्त भी लोग बीमार पड़ते हैं तो कारण समझ में नहीं आता कि इतनी सुदृढ़ सुरक्षा व्यवस्था होने पर भी लोग बीमार क्यों पड़ते हैं? स्वस्थ रहने के लिए वास्तव में विशेष कुछ उपाय करना आवश्यक नहीं है। आवश्यक इतना करना भर है कि जिससे वे कारण दूर हो जाएं जो शरीर को रोग प्रतिरोधक क्षमता या उसकी सुरक्षा व्यवस्था को दुर्बल बनाते हैं।

वे कारण हैं खान-पान और रहन-सहन की गलत आदतें। डा० कार्टलेन का कथन है कि मनुष्य किन्हीं बाहरी कारणों से नहीं बल्कि हमेशा गलत खान-पान और गलत रहन-सहन के कारण ही बीमार पड़ता है। यह जानते हुए भी कि शरीर सभी प्रकार के भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्षों का साधक है, वह स्वस्थ रहे तभी हर प्रकार से आनन्दित रहा जा सकता है, खान-पान और रहन-सहन की गलत आदतें डालना नासमझीपूर्ण आत्मघाती प्रक्रिया ही सिद्ध होती है।

शास्त्रकारों ने शरीर को परमात्मा का मन्दिर कहा है। इसमें ईश्वर का अंश आत्मा निवास करता है। मन्दिर को गन्दा नहीं रखा जाता, वहाँ कूड़ा-कचरा नहीं फैलाया जाता, वहाँ की व्यवस्था नहीं बिगाड़ी जाती तो क्या कारण है परमात्मा के जीवित जागृत और प्रत्यक्ष मन्दिर की व्यवस्था तोड़ी-मरोड़ी जाए तथा वहाँ अस्त-व्यवस्तता उत्पन्न की जाए।

इतना उच्च दृष्टिकोण नहीं भी अपनाया जाता तो कम से कम यही विचार करना चाहिए कि प्रकृति हमारे स्वास्थ्य की स्वयं कितनी चिन्ता करती है। उसने स्वस्थ रहने और रोगों से बचने के लिए कैसी अनुपम व्यवस्था की है? उस व्यवस्था को भंग करना नासमझी ही नहीं प्रकृति द्रोह भी है जिसका दण्ड रोग, बीमारी और अकाल मृत्यु के रूप में भोगना पड़ता है।★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म का अंधविश्वासों से क्या संबंध ?

धर्म जीवन की एक परम आवश्यकता है, जीवन सार्थकता की परम साधना है। 'यतोऽभ्युत्थानः निःश्रेयस् कशवुमैन' के अनुसार जिससे इहलोक में उन्नति और परलोक में भी कल्याण सधे वह धर्म है। इस व्याख्या या परिभाषा के अनुसार धर्म प्रथा परम्पराओं में नहीं है, वह उन गुणों के धारण करने में है जो आत्मिक और पारलौकिक जीवन में कल्याणकर सिद्ध हों। इस स्तर का धर्म जीवन-जीने की एक कला कहा जा सकता है और उसे मनुष्य के लिए अविवार्य रूप से आवश्यक समझा जा सकता है। जितना सम्मानास्पद और आवश्यक यह वास्तविक धर्म है उतना ही घृणित और हेय है--धार्मिक अन्धविश्वास। अन्न जब भोजन बनकर थाली में आता है तब वह आदरणीय होता है और उपयोगी भी। पर जब वही पेट में पहुँचने के बाद सड़े हुए मल के रूप में बाहर निकलता है तो घृणित दुर्गन्ध युक्त और अस्पर्श्य बन जाता है। धर्म के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। उसे मनुष्य जाति का प्राण कहना चाहिए पर जब वह अज्ञान के आवरण में लपेटा हुआ और धर्म व्यवसायियों द्वारा विकृत किया हुआ होता है तो उसे अन्धविश्वास कहा जाता है।

इस धार्मिक अन्धविश्वासों ने लोगों का जितना अहित किया है, उतना धर्म ने भी कभी नहीं किया। उदाहरण के लिए प्राचीन काल में धर्म के नाम पर प्रचलित अन्ध-परम्पराओं ने नर-बलि की प्रथा प्रचलित की और उस मूढ़ता की बलिवेदी पर असंख्यों मनुष्यों का रक्त बहा तथा क्रन्दन से आकाश गूँजा, फिर भी निष्ठुर धर्म भीरुता नहीं पिघली और वह अनर्थ हजारों वर्षों तक चलता रहा। उस धर्मानुष्ठान को करने वाले अपने को धर्मात्मा कहते रहे और आश्चर्य की बात तो यह कि जनता भी उनके कार्यों में आँख-मूँदकर सहयोग देती रही। कौन विचारशील व्यक्ति इन प्रथा-परम्पराओं को, जिनमें निष्ठुरता ही भरी हुई है—धर्म कहेगा ? हालांकि सभ्यता के साथ-साथ नर-बलि घटती चली गई। अब उसके विरुद्ध कानून भी बन गये हैं और सभ्य समाज में उसके विरुद्ध वातावरण भी है, विचारशील लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, पर उसी का छोटा रूप पशु-बलि के रूप में अभी भी विद्यमान है और समझदार कहे जाने वाले विभिन्न धर्मों के तथाकथित धर्मपरायण लोग भी उसे निष्ठुरतापूर्वक अपनाये हुए हैं। उस कुकृत्य को करते हुए उन्हें न लज्जा आती है, न संकोच का ही अनुभव होता है।

इस तरह की निष्ठुर क्रूरता के कितने ही अवशेष यत्र-तत्र विद्यमान मिलते हैं जो धार्मिक अन्धविश्वासों की क्रूर कथा कहते हैं। उदाहरण के लिए मैक्सिको के नेशनल म्यूजियम में एक सात फीट ऊँचा गोलाकार पत्थर रखा हुआ है। इसे संसार का सबसे अधिक खूनी पत्थर कहा जाता है। यह पाषाण प्राचीन अजटेक्स राज्य के आदिवासियों की परम्परागत बलिवेदी रहा है, अजटेक्स निवासी धार्मिक मान्यताओं वाले भोले-भाले लोग थे। उनका विश्वास था कि मानव बलि चढ़ाने से देवता प्रसन्न होते हैं और संसार की भलाई करते हैं। यदि उन्हें यह उपहार न दिया जाए तो रुष्ट होकर दैवी प्रकोप उपस्थित करते हैं। इस विश्वास के आधार पर समय-समय पर वे अपने ही लोगों को पकड़ कर बलि पर चढ़ा देते थे। कोई पूजा गृह बनता था या राज्याभिषेक होता था तब तो बलि की मात्रा प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाती है। पिछली संख्याओं से अधिक संख्या बढ़ाना ही उत्साह का प्रतीक माना जाता था। बलि की प्रथा भी बड़ी वीभत्स थी। सिर काटने की अपेक्षाकृत कम कष्ट कर पद्धति वे नहीं अपनाते थे, वरन् छाती चीर कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय निकालना और उस कलेजे को देवता के सम्मुख प्रस्तुत करना यही अधिक कष्टकारक तरीका वे अपनी धर्म-भावना को चरितार्थ करने का उत्तम प्रमाण मानते थे। टियोकाली (स्पेन) के समीप ही एक वन्य प्रदेश में अजटेक्स जाति का एक देवालय था। स्पेन निवासियों ने इस क्षेत्र की खोज की तो मायन योलोक के इर्द-गिर्द १ लाख ३६ हजार नर मुंड इधर-उधर बिखरे हुए पाये गये। यह बलिदान किये गए निरीह मनुष्यों की खोपड़ियाँ थीं और उन्हें इस विपत्ति में फँसा देने वाला एकमात्र कारण था अंधविश्वास, जिसे वहाँ के निवासी एक गहरी धर्म श्रद्धा के रूप में अपनाते थे।

अमेरिका में युद्ध-देव के मन्दिर का विवरण ढेरों पत्रिकाओं में अनेकों बार प्रकाशित किया जा चुका है और इसके सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें भी लिखी गई हैं। यह मन्दिर कोलम्बस के अमेरिका पहुँचने के दो सौ वर्ष पूर्व बनाया गया था। इसके लिए कई वर्षों से लोगों को पकड़-पकड़ कर इकट्ठा किया जाता था और उनकी बलि दी जाती थी। यह नर-बलि सामूहिक रूप से दी जाती थी। सामूहिक बलि के समय एक उत्सव का आयोजन किया जाता था। इकट्ठे किये गये लोगों की संख्या प्रतिष्ठापना के समय हजारों की संख्या में पहुँच गई थी। देव प्रतिष्ठा के समय उन बलि-मानवों का झुंड-जूलुस के रूप में निकाला गया। उनका जूलुस दो मील लम्बा था। यह धीरे-धीरे आगे बढ़ता था। कई पुजारी इन बलिमानवों का हृदय चीरने के लिए नियुक्त थे, जो थोड़ी-थोड़ी देर बाद यह पुण्य कार्य सम्पन्न करते थे। इस प्रकार अहर्निश चार दिन में कितने ही वध-कर्त्ताओं द्वारा यह अनुष्ठान पूरा हो पाया और बहता हुआ रक्त उस पवित्र मन्दिर के पत्थर पीसने के काम में लाया गया।

प्रशान्त महासागर के फातुहिवा द्वीप में मिले खण्डहरों और वहाँ से प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह निष्कर्ष निकले हैं कि उस द्वीप में पहले कभी साधन सम्पन्न वैभवशाली लोगों का समुदाय रहता था। ये लोग लुप्त कैसे हो गए? इस तथ्य के अनुसंधान की भी एक रोमांचक गाथा है। फ्रांस के पुरातत्व विज्ञानी डा० फ्रान्सिस ने इस लुप्त जाति के लोगों के इतिहास की कड़ियाँ मिलाई हैं। उन्हें जब इस जाति के सम्बन्ध में पता चला तो खोज करते हुए उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि इस द्वीप में रहने वाले लोगों द्वारा बड़ी मात्रा में स्वर्ण संग्रह किया गया था, जो इसी द्वीप के खण्डहरों में कहीं जमा है। डा० फ्रान्सिस वहाँ पहुँच गए और उन्होंने जो कुछ खोज निकाला वह अद्भुत था। द्वीप में मिले खण्डहर, तहखाने, बुर्जियाँ अपने निर्माताओं और स्वामियों के समुन्नत होने का प्रमाण दे रहे थे।

यहाँ प्राकृतिक साधन भी जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त थे। इतना सब होने पर भी यह पता नहीं चल रहा था कि वह जाति लुप्त कैसे हो गई? इस प्रश्न का समाधान डा० फ्रान्सिस को और अधिक खोजने के लिए प्रोत्साहित कर रहा था। उस द्वीप के पाड नामक एक वनवासी व्यक्ति को लेकर फ्रांसिस उस सघन वन में गए। उपलब्ध प्राचीन सभ्यता के चिह्न और अवशेषों ने उन्हें इस निष्कर्ष पर तो पहुँचाया कि यहाँ कोई साधन सम्पन्न और बुद्धिमान लोग रह रहे हैं, पर वे समाप्त कैसे हो गए? यही प्रश्न समझने वाला था। इतिहास का यह पृष्ठ बहुत परिश्रम के बाद ही खुला।

फ्रांसिस ने उस प्रदेश में भ्रमण करते हुए उस क्षेत्र में नरबलि की प्रचलित प्रथा के ढेरों प्रमाण पाये जो सर्वत्र बिखरे पड़े थे। वट वृक्षों जैसी जटाओं वाले पेड़ों पर नर-मुंड इस तरह फँसे पड़े थे, मानो वे उन्हीं में फले हों। अस्थि कंकाल जहाँ-तहाँ छितरे पड़े थे। ऐसे पत्थर पाये गए जिनमें मनुष्य का सिर फँसाकर उन्हें कुल्हाड़ी से काटा जाता था। वीभत्सता की कथा कहने वाले ये प्रमाण इतने अधिक थे कि एक शब्द में उसे किसी समय का नर-बलि क्षेत्र कहना भी अत्युक्ति न होगा। गहन पर्यवेक्षण और अनुसंधान करने के बाद फ्रांसिस इस नतीजे पर पहुँचे कि यहाँ कोई प्रगतिशील जाति रही है। यदि ऐसा न रहा होता तो वास्तुकला के गहन ज्ञान से सम्बन्धित मजबूत भवन बनाना और उनके साधन जुटाना सम्भव ही नहीं होता। जो उपकरण वहाँ मिले वे भी बौद्धिक प्रगति और समृद्धि की साक्षी देते थे। पर लगता है कि धार्मिक अन्धविश्वास यह मान्यता उनके मन में जम गई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्धविश्वास से प्रेरित इसी श्रद्धा ने उन लोगों को मनुष्यघाती वना दिया और उनमें से जिसके चंगुल में जो फँस जाता वह उसे पकड़ कर वलि चढ़ा देता और अपनी समृद्धि तथा उन्नति की आशा करता। सम्भव है इसमें प्रतिशोध की भावना भी जमी हो और उनमें देव अनुग्रह की लालसा के साथ नर-वलि की मात्रा को अति की सीमा में पहुँचा दिया हो। हो सकता है पुरोहितों ने इस प्रक्रिया को प्रचलित किया है और वे सव इस नरवलि की प्रथा में निमग्न होकर अपना अस्तित्व ही खो वैठे हों। फ्रांसिस ने इस शोध में अपने साथ रहे आदिवासी पाड से सुनी प्रचलित दन्त-कथाओं के आधार पर वताया कि इस लुप्त जाति के लोग समय-समय पर वड़े-वड़े धार्मिक समारोह आयोजित करते थे। इन समारोहों में दूर-दूर से लोग सम्मिलित होने के लिए आते और इकट्ठे होते थे। मशालें जलाई जाती थीं, नगाड़े वजते थे उन्हीं अवसरों पर शंख और सींगों से वनी तुरही का प्रयोग होता था। इसके वाद चलता था मद्यपान और नरवलि का वीभत्स दौर। रक्त की धाराएँ वह जातीं, घायलों और मृतकों को देव कृपा का पात्र समझा जाता था। और ये धर्मानुष्ठान इतने वढ़े कि यह समुन्नत जाति इसी जंजाल में फँसकर अपना अस्तित्व गँवा वैठी। उनके चिह्न अवशेष मात्र वाकी रह गये।

अफ्रीका में भी धार्मिक अन्धविश्वासों के कारण हुए नर संहार की अगणित घटनाओं के प्रमाण मिले हैं। वहाँ की धर्म पुरोहित महिलाएँ डाकिन देवियों को प्रसन्न करने के नाम पर भूतकाल में अगणित मनुष्यों के प्राण हरण करती रही हैं। कभी-कभी तो इन दिनों वहाँ इस तरह की घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं। कुछ दिन पूर्व तगांनिका (अफ्रीका) की राजधानी दारेःसलाम के उच्च न्यायालय में तीन डायनों के विरुद्ध अभियोग चला। उससे वहाँ प्रचलित इस अघोर विद्या के सम्वन्ध में कई नई वातें प्रकाश में आईं। जिन तीन डायनों के विरुद्ध अदालत में मुकदमा चला उनके नाम थे नेआमसेनी, जामाल्टा और जापिवू।

ये तीनों महिलाएँ मुकद्दमे की कार्यवाई के दौरान रंग-विरंगी जादुई चादरे, जिसे वहाँ की भाषा में कांगा कहते हैं, ओढ़े वैठी रहीं। उनका विश्वास था कि उसे पहन लेने पर उनका कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता। पुलिस अधिकारी ने उन पर नृशंस हत्याओं के अभियोग लगाए। जव उनके विरुद्ध लगाये गये आरोप अदालत में पढ़कर सुनाये तो वे सुनकर मुस्करा भर दीं, मानो उन्हें कोई प्रशंसनीय काम करने का श्रेय दिया जा रहा हो। अदालत ने इन तीनों डायनों को चौदह वर्ष की सजा दी। न्यायाधीश ने अपने फैसले में लिखा कि इस क्षेत्र में फैला हुआ अन्धविश्वास एक प्रकार से डाकिनी आतंक का पृष्ठ पोषण ही कर रहा है। जिस लड़की की वलि दी गई थी, उसके पिता तक ने डाकिनी के विरुद्ध गवाही नहीं दी। उसे डर था कि इससे कुपित होकर डाकिनी उसे या उसके परिवार के अन्य लोगों को क्षति पहुँचायेगी। लोग इन नृशंस स्त्रियों के कुकृत्यों की चर्चा तक करने से डरते हैं। ऐसी दशा मे सवूत के अभाव में उन्हें प्राणदण्ड जैसी सजा कैसे दी जाए? जवकि ये आयेदिन इसी प्रकार की हत्यायें और क्रूर कर्म करते रहने की अपराधी हैं।

नरवलि या पशुवलि तो उन अन्धविश्वासों का एक छोटा-सा हिस्सा मात्र है, जो धर्म की आड़ में पलते और वढ़ते रहते हैं। अपने देश में भी मध्यकाल में नरवलि का धुँआधार प्रचलन था। आजकल भी समाचार पत्रों में आये दिन देवी को प्रसन्न रखने के लिए इस तरह की घटनाओं के समाचार छपते रहते हैं। इसके अतिरिक्त टोना-टोटका, जन्तर-मन्तर आदि के नाम पर कितने लोग छले जाते हैं? इसकी न तो गणना की जा सकती है और न ही हिसाव लगाया जा सकता है। विचार किया जाना चाहिए कि जो धर्म व्यक्तिगत जीवन को सुखी समुन्नत वनाता है, आत्मिक उत्कर्ष का आधार तैयार करता है तथा सामाजिक सुव्यवस्था कायम करता है, वह इन हत्याओं, जघन्य कृत्यों की प्रेरणा किस प्रकार देता है। निश्चित ही उसका धर्म से कोई सम्वन्ध नहीं है। धर्म को जीवित रहना चाहिए और उसका समर्थन पोषण करना चाहिए, पर धर्म के नाम पर प्रचलित इन अन्धविश्वासों का जितनी जल्दी हो सके उन्मूलन ही करना चाहिए, जिसने सदा से मनुष्य को कलंकित किया है और उसे पतन के गर्त में गिराया है। 卐

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतंत्र चिन्तन-औचित्य का अवलम्बन

संसार के प्रायः सभी देशों में ऐसी प्रथा परम्पराएँ प्रचलित हैं, जिनका कोई कारण या लाभ समझ सकना अति कठिन है फिर भी वे अपने-अपने क्षेत्रों में मुद्दतों से चली आती हैं और उन्हें अशिक्षित ही नहीं शिक्षित भी चाहे-अनचाहे पूरा करते हैं। जो उन्हें निरर्थक मानते हैं वे भी उनका निर्वाह अभ्यस्त ढर्रे को तोड़ने का साहस न कर पाने की वजह से करते हैं और साथियों के विरोध का झंझट सिर पर न लेने के कारण उस चिन्ह पूजा को अन्य लोगों की तरह ही पूरा करते हैं।

मनुष्य के जीवन में जन्म, विवाह तथा मृत्यु ये तीन प्रमुख घटनाएँ होती हैं। अतः अन्ध-विश्वास भी प्रायः इन्हीं तीन घटनाओं के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इण्डोनेशिया में ऐसी मान्यता प्रचलित है कि मंगलवार को पैदा हुआ बच्चा अभागा, अपराधी, बेईमान अथवा अविश्वसनीय बनता है। परन्तु पश्चिमी देशों में इसके विपरीत मंगलवार को पैदा होने वाला सबसे गुणी होता है ऐसी मान्यता है।

इन्डोनेशिया में जन्म अथवा मृत्यु से सम्बन्धित और भी अनेक अन्ध-विश्वास प्रचलित हैं। जैसे शुरू के दिनों में बच्चों को भूतों की नजर से बचाया जाता है। उसके बिछावन के नीचे नारियल के खाल में अण्डा मिला चावल तथा लाल मिर्च भर कर रख दी जाती है ताकि प्रेतात्माएँ उस पर बुरा असर न डाल सकें। प्रेतात्मा को धोखा देने के लिए पत्थर पर पेन्ट से आँख, कान, नाक आदि चित्रित करके बच्चे के बिछावन पर लिटा दिया जाता है ताकि वे भ्रमित होकर उसी पर हमले करें।

स्वप्न में अपनी मौत या जलता हुआ घर देखना कोरिया के लोग शुभ भविष्य की पूर्व सूचना मानते हैं। पश्चिम योरोप में तिलचट्टे दुर्भाग्य सूचक और जापान तथा कोरिया में सौभाग्य सूचक माने जाते हैं। अफ्रीकी देशों में लोग पूर्णचन्द्र को प्रेतात्माओं का सहभागी मानते और उन्हें देखने से बचना चाहते हैं। परन्तु चीनियों और कोरियाइयों के लिए यह हर्ष का दिन होता है।

आस्ट्रेलिया की आदिम जातियों में कुछ विचित्र प्रकार की परम्पराएँ प्रचलित हैं। वे विशेष अवसरों पर अपने क्षेत्र के पशु पक्षियों की नकल उतारते हैं। ऐसे परिधान पहनते हैं जिससे उनकी आकृति उन प्राणियों जैसी दृष्टिगोचर होने लगे। अभ्यास करके वे उन्हीं की बोली बोलने का भी प्रयत्न करते हैं। उनमें से जो लोग इसके अभ्यस्त होते हैं उन्हें सम्मान और पुजापा दोनों ही मिलते हैं। इस प्रचलन के पीछे उनकी मान्यता है कि उनके मृत पूर्वज इस अभिनय से प्रसन्न होते और आशीर्वाद देते हैं।

किशोरों को वयस्कों के अधिकार पाने के अवसर पर बिरादरी के सामने गरम किये हुए पत्थरों पर लुढ़कने की परीक्षा में पास होना पड़ता है। जो डरते हैं या असफल रहते हैं उन्हें बड़ी आयु हो जाने पर भी बच्चों की पंक्ति में ही बैठना पड़ता है। पूर्वजों के प्रतिनिधि वे सर्प देवता को मानते हैं। उनकी आकृति पीठ पर बना कर नाचते, कूदते, पूजा परिचर्या पूरी करते हैं। औरत मरने पर मर्द उसके बाल काट कर एक साल तक जाँघ पर बाँधे रहता है और मृत पुरुष के दाँत औरत को एक थैली में बन्द करके गले से लटकाये रहने होते हैं। बीमारी को वे भूतों का प्रकोप मानते हैं और उपचारकर्ता रोगी को दाँत से काट-काटकर अच्छा होने का विश्वास दिलाते हैं। मृत्यु के बाद मनुष्य प्रेतात्मा बनता है और घर से लोगों से भोजन पाने की अपेक्षा करता है। इस मान्यता के अनुसार वे निकटवर्ती जलाशय में मृतक के निमित्त जब तब आहार बहाने की प्रथा पूरी करते हैं।

ढर्रे एवं प्रचलन के सामने सिर झुकाते रहने और उनका बोझ ढोने से समय की बर्बादी के अतिरिक्त मानसिक दुर्बलता भी बढ़ती है। मनुष्य स्वतन्त्र चिन्तन एवं औचित्य का अवलम्बन कर सकने में असमर्थ बनता है।

★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुष्टता के दमन की सृष्टि व्यवस्था

मनुष्य एक दर्पण की तरह है। सम्पर्क एवं वातावरण के प्रभाव में, प्रस्तुत ढाँचे में ढलने एवं प्रचलित प्रवाह में बहने लगता है। मूलतः व्यक्ति दैवी अंश अनुदान साथ लेकर जन्मता है फिर भी यदि उसे भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट वातावरण में रहना पड़े तो उस ढाँचे में ढलते हुए भी उसे देर नहीं लगती। अनाचारी, अपराधी, दुर्गुणी, दुर्व्यसनी लोगों की बढ़ती हुई संख्या यही बताती है कि सम्पर्क एवं अनुकरण का प्रभाव कितना प्रचण्ड होता है। निष्कृष्ट विचारणा अपनाने वाला व्यक्ति क्रमशः पतन की दिशा में बढ़ता और नरक जैसी दुर्गन्ध भले दलदल में धँसता चला जाता है। यही बात परिस्थितियों के सम्बन्ध में भी है। सत्संग की महिमा सर्वविदित है, कुसंग का प्रभाव उससे भी अधिक होता है। उठने में बहुत प्रयास करने और साधन जुटाने पड़ते हैं, पर गिरने में तो इच्छा मात्र से सफलता मिल जाती है। मीनार पर चढ़ा हुआ व्यक्ति भी एक कदम आगे बढ़ाने भर से सैकिण्डों में जमीन में टकराता और चूर-चूर होते देखा जाता है।

जिस प्रकार सज्जनों और महामानवों का अपना इतिहास है उसी प्रकार दुष्ट दुरात्मा भी समय-समय पर उपजते और परिस्थितियों का अनुकूलता पाकर दुष्टता के उस स्तर तक जा पहुँचते हैं जिसकी कल्पना करने तक में मनुष्यता सिहर उठती है। पौराणिक गाथाओं में कितने ही ऐसे नृशंस दैत्य दानवों का उल्लेख है जिनने मानवी परम्पराओं को ताक में रख कर ऐसे क्रूर कृत्य किये जैसे हिंस्र पशु भी करते नहीं देखे जाते। वे तभी आक्रमण करते हैं जब भूखे होते या छेड़े जाते हैं। इसके विपरीत नर-पिशाचों में ऐसे भी पाये गये हैं जो उत्पीड़न को विनोद मानते और उसका आनन्द लेने के लिए ऐसे कृत्य करते जैसे बधिक भी नहीं करते। मानवी गरिमा से ठीक विपरीत स्तर के ऐसे उदाहरणों से यही प्रतीत होता है कि भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट सान्निध्य से मनुष्य को न पशु बनने में देर लगती है और न पिशाच बनने में।

इस स्तर के दो उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं। यों सोचने पर ऐसी नृशंसता छोटे या बड़े रूप में बरते जाने की घटनाएँ अन्यत्र भी पाई जा सकती हैं।

'ड्राक्युला को विश्व का सर्वाधिक क्रूर शासक माना है। ड्राक्युला, जिसे कि इतिहासकारों ने "मानव शरीर छेदने वाला" तक कह दिया है वे अनेक बार अपने मनोरंजन के लिए दुधमुहे बच्चों को उनकी माताओं के सीने पर ही जड़वा दिया। इन बच्चों को मार कर उन्हें ही अपने बच्चों का कच्चा मांस खाने पर मजबूर किया। वह अपनी प्रसन्नता के लिए गाँवों को जलवाता एवं स्वयं आनन्दित होता। अपनी विशेष सनक में उसने राज्य के सभी बूढ़े तथा बीमार लोगों को जिन्दा जलवा दिया। ड्राक्युला के दरबार में टँगी लाशों से सिर चकराने वाली बदबू आ रही थी। इसी समय उसके अत्यन्त विश्वासपात्र मन्त्री ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा कि लोगों को ऐसे स्थानों पर टँगवाया जाय, जिससे लाश की दुर्गन्ध राजा एवं अन्य दरबारी लोगों को महसूस न हो तो अच्छा रहे। इस पर "क्रूरता के अन्वेषक" ड्राक्युला ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक तुरन्त आदेश दिया कि इस मन्त्री को भी एक खूँटे पर ठोंक दिया जाय तथा अपने प्रिय पात्र के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा कि अब तुम्हें कभी भी दूसरों की बदबू नहीं आयेगी। अपनी गल्ती के लिए क्षमा माँगने पर उसने दयाभाव दिखाते हुए कहा कि उसका खूँटा अन्य लोगों से कुछ ऊँचा जड़वा दिया जाय।

काऊण्ट ड्राक्युला जो कि सन् १४३० ई० में ट्रांसलवानिया के पहाड़ी क्षेत्र का शासक बना का अन्त उसके द्वारा अपनायी गई पद्धति से भी अधिक क्रूर तरीके से हुआ। तुर्की सेनाओं ने अचानक आक्रमण करके भागते हुए ड्राक्युला को बन्दी बना लिया और रोज उसके शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का एक टुकड़ा काट कर उसे ही कच्चा खाने पर मजबूर किया। निश्चित रूप से अपने कुकर्मों के अनुरूप ही उसकी मृत्यु तड़प-तड़प कर सन् १४७६ ई० में हुई।

पन्द्रहवीं शदी में इंग्लैंड में एक ऐसे मानव-राक्षस ने जन्म लिया जिसके आतंक से चौथाई शदी तक इंग्लैंड के गोलोवे क्षेत्र में लोग थर-थर काँपते रहे। इस व्यक्ति का नाम स्वेने बीन था। बचपन से ही वह इतना खाना खाता था कि उसका पिता अपनी मजदूरी से कभी उसका पेट न भर सका। संयोगवश युवावस्था में उसका सम्बन्ध ऐसी ही एक युवती से हो गया। दोनों कुछ दिन तक लोगों की मुर्गियों व उनके बकरी-बकरों का गला काटकर उनका ताजा खून पीते रहे, किन्तु खून के प्यासे इस दम्पत्ति को मात्र इतने से सन्तोष न हुआ और दोनों समाज से अलग-अलग समुद्र के गोलोवे क्षेत्र की एक गुफा में रहने लगे। यह स्थान आम आवागमन से दूर वीरान था।

स्वेने बीन दम्पत्ति ने इस क्षेत्र में २५ वर्ष गुजारे। इस अवधि में उनके ८ पुत्र व ६ पुत्रियाँ तथा बच्चों के आपसी अवैध सम्बन्धों से २२ बच्चे पैदा हुए। इस प्रकार ३८ व्यक्तियों का यह पूरा काफिला मात्र मानव रक्त पर जीवनयापन करता था। इस मार्ग से निकलने वाले यात्री अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच पाते थे। बीच में ही स्वेने बीन दम्पत्ति मार कर उनके खून और मांस को अपना भोजन बनाते थे। अन्तिम समय में इस रास्ते से ८-१० आदमियों तक का काफिला सुरक्षित नहीं जा सकता था। अनेकों बार खोज बीन के अनेकों प्रयत्न किये गए किन्तु २५ वर्षों तक इस रहस्य में पर्दा ही पड़ा रहा। यदा-कदा मनुष्यों के कटे शिर, हाथ, पाँव समुद्र में बहते देखे जाते जिससे जनता में भय छा जाता। अत्याचार अधिक दिन तक नहीं चलते।

एक बार स्वेने बीन परिवार के लोगों ने एक दम्पत्ति पर आक्रमण कर पत्नी को मार कर पति के सामने ही उसका ऊष्ण रक्त-पान किया। पति प्राण रक्षार्थ संघर्ष कर रहा था कि मार्ग में अन्य यात्रियों के आ जाने से वह जान बचाकर भागने में सफल रहा। यह समाचार पाकर तत्कालीन सम्राट् जेम्स प्रथम ने इस परिवार के सदस्यों को पकड़ने का आदेश दिया। गुप्तचर एवं सैनिकों के दस्ते असफल होकर वापिस आ गए। काफी प्रयत्न करने पर शिकारी कुत्तों की सहायता से इस परिवार के सभी सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। राजाज्ञा से स्वेने बीन परिवार को उसके जन्म स्थान एडिनबरा लाया गया जहाँ उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया।

यह उदाहरण बताते हैं कि क्रूरता की शक्तियाँ अपनी प्रौढ़ता के दिनों में मनमानी तो कर लेती हैं, पर विश्व व्यवस्था की अदृश्य शक्तियाँ देर तक उन्हें भी मजा चखाती हैं। दुष्टता को सज्जनता न जीत सके तो प्रकृति के नियमन क्रम में ऐसी शक्तियों का भी अस्तित्व है जो लाठी का जवाब लाठी से और दुष्टता का जवाब प्रताड़ना से दे सके।

एक आदमी सन्त तुकाराम का कीर्तन सुनने तो नित्य ही आता, पर उनसे बहुत द्वेष रखता। वह मन ही मन किसी अवसर पर सन्त तुकाराम को नीचा दिखाने की ताक में रहा करता था।

एक दिन तुकाराम की भैंस उसके बाग के कुछ पौधे चर आई। बस वह आकर लगा गालियाँ सुनाने। इस पर भी जब सन्त उत्तेजित न हुए तो उसे और भी गुस्सा आया और एक काँटो वाली छड़ी लेकर तुकाराम को इतना पीटा कि रक्त बहने लगा। फिर भी तुकाराम को न क्रोध आया—न प्रतिरोध ही किया।

सन्ध्या समय जब वह व्यक्ति नित्य की भाँति कीर्तन में नहीं आया तो सन्त तुकाराम स्वयं उसके घर गये और स्नेहपूर्वक भैंस की गलती की क्षमा माँगते हुए उसे कीर्तन में ले आये।

अब वह व्यक्ति तुकाराम के चरणों में पड़ा था और क्षमायाचना कर रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धिमान ही नहीं, संवेदनशील भी बनें

भौतिक उपलब्धियाँ कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हों वे तब तक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकतीं जब तक उनमें सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ न जुड़ी हों। ध्वंस में प्रयुक्त होने वाले साधन तो सामूहिक विनाश के कारण बनते हैं। आग भोजन पकाने, मशीनें चलाने तथा अन्यान्य कार्यों में प्रयुक्त होती है ? सृजन की दिशा में उसका प्रयोग मानव मात्र के लिए उपयोगी बनता है। ध्वंस में प्रयुक्त हो तो वही आग कुछ ही क्षणों में दावानल का स्वरूप ग्रहण करके अगाध सम्पत्ति को नष्ट कर डालती है। रचनात्मक कार्यों में आने वाली एक वस्तु उपयोगी बन जाती है। वही ध्वंस में प्रयोग होने पर विनाश का दृश्य उपस्थित करती है।

मानवी व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उसमें दोनों ही प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। बुद्धि का योगदान तो इन दोनों में ही होता है। किन्तु एक के साथ सम्वेदनाओं का पुट जुड़े होने से रचनात्मक बनकर मानव मात्र के लिए उपयोगी बनती है। वहीं दूसरी प्रखर होते हुए भी सम्वेदनाओं से रहित होने के कारण स्वार्थी, सङ्कीर्ण बनकर सङ्कट ही खड़ा करती है।

महत्व उपलब्धियों का नहीं उनके साथ जुड़े उद्देश्यों का है। आदर्शों एवं सिद्धान्तों के लिए प्रयुक्त होने वाले साधन ही मानवी विकास के आधार बनते। भले ही वे अल्प क्यों न हों, किन्तु महत्व उनका ही है जो सदुद्देश्य के लिए प्रयुक्त हों। सही अर्थों में वे ही सामाजिक विकास के कारण होते हैं। बढ़े हुए साधन व्यक्ति विशेष के लिए उपयोगी हो सकते हैं। किन्तु आदर्शों के अभाव में तो वे सङ्कट ही खड़ा करते हैं। समीक्षा की जाय तो बुद्धि का सही उपयोग जिस कारण बन पड़ता है—वह है मानवी सम्वेदना। उससे जुड़कर बुद्धि सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ अपनाती तथा सबके लिए उपयोगी बनती हैं। साधनों का प्रयोग श्रेष्ठ कार्यों के लिए तभी हो पाता है। व्यक्ति तथा समाज का उत्थान-पतन इसी आधार पर निर्भर करता है।

बुद्धि के अनुदान भौतिक उपलब्धियों के रूप में सर्वत्र परिलक्षित हो रहे हैं। प्रकृति के एक से बढ़कर एक रहस्य इसके द्वारा खोले जा रहे हैं। वैज्ञानिक शोधों में इसकी ही प्रखरता दिखायी पड़ती है। बहिरंग जगत की सम्पन्नताएँ इसी के द्वारा बढ़ी हैं। किन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि मनुष्य बुद्धि एवं साधनों की दृष्टि से कितना भी विकसित क्यों न हो गया हो, मानवी गुणों की दृष्टि से उसका पतन ही हुआ है। इसका एक ही कारण है—जिस आधार पर व्यक्तित्व की श्रेष्ठता विनर्मित होती है, उसकी उपेक्षा करना। दिव्य सम्वेदनाओं से रहित होने पर तो पशु प्रवृत्तियों को ही प्रोत्साहन मिलता है। निरंकुश बुद्धि स्वार्थी, सङ्कीर्ण बनकर सामाजिक विग्रह खड़ा करती है।

उद्देश्यों के अनुरूप मनुष्य की विचारणा चलती तथा उसकी पूर्ति के लिए अनेकों जाल-जंजाल खड़े करती है। मानवी आदर्श यदि भौतिक साधनों की प्राप्ति तक ही सिमट कर रह गया है तो स्पष्ट है कि उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य नीति, अनीति पर ध्यान दिये बिना वह मार्ग अपनायेगा जो उसकी गरिमा के अनुकूल नहीं है। फलस्वरूप संकीर्णता बढ़ेगी। अधिक संग्रह करने की होड़ चल पड़ेगी। मानवोचित आदर्शों से समाज विमुख हो जायेगा। स्पष्ट है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने से परस्पर असहिष्णुता, ईर्ष्या की भावना को ही पोषण मिलेगा। पशु प्रवृत्तियाँ पनपने तथा नर-पशुओं की संख्या ही बढ़ती जायगी।

इसे समय का अभिशाप ही कहा जाना चाहिए कि बुद्धि ने भौतिक उपलब्धियों को ही अपना आदर्श माना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे पाने के लिए अपनी सारी सामर्थ्य झोंक दी। प्रयत्न करने पर सफलता का मिलना असंदिग्ध है। सम्पन्नताएँ अनुगामी हुईं, किन्तु इतने मात्र से मनुष्य सन्तुष्ट न हो सका। अधिक प्राप्त करने एवं संग्रह की ललक बनी रही। प्रकृति के सीमित साधनों को यदि एक मनुष्य की झोली में डाल दिया जाय तो भी उसकी असीम तृष्णा की पूर्ति सम्भव नहीं है। अपूर्तिनीय तृष्णा की पूर्ति के लिए बुद्धि ने वह मार्ग अपनाया जो समस्त मानव जाति के लिए हानिकारक है।

अस्त्र-शस्त्रों एवं अन्यान्य विनाशकारी यन्त्रों के निर्माण में बात सुरक्षा की होती तो समझ में भी आती। किन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा इन विनाशकारी यन्त्रों पर नहीं टिकी है। उसके लिए तो सामान्य अस्त्र, शस्त्र एवं कुशल सैनिक भी पर्याप्त होते हैं। उनके शौर्य, पराक्रम के विकास से ही राष्ट्र को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखा जा सकता है। विनाशकारी बमों तथा अन्यान्य विस्फोटक यन्त्रों में तो बुद्धि की कुटिलता ही झाँकती दिखायी देती है।

समाज में जैसा भी आदर्श होगा, उसके अनुरूप ही प्रवृत्तियाँ पनपेंगी एवं गतिविधियाँ चल पड़ेंगी। आदर्श विलासिता और सम्पन्नता को बनाया गया। फलस्वरूप संसार उसी ओर चल पड़ा। श्रेष्ठ आदर्शों एवं सिद्धान्तों के अभाव में गतिविधियों में उत्कृष्टता का समावेश नहीं रहा। कारणों की गहराई में जाने पर एक ही तथ्य का पता लगता है वह है—बुद्धि द्वारा मानवी सम्वेदना की उपेक्षा की जाना। बुद्धि की निरंकुशता इसी कारण बढ़ी। संकीर्णताओं को प्रोत्साहन मिला। ध्वंसात्मक गतिविधियाँ अपनाकर व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने का सिलसिला चल पड़ा।

बुद्धि का महत्व एवं उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है। किन्तु यह तभी बन पड़ती है जब उसके साथ सम्वेदनाओं का संयोग हो। बुद्धि की उच्चतम स्थिति को 'प्रज्ञा' के नाम से विभूषित किया गया है। सघन सम्वेदनाओं के साथ जुड़कर ही वह इस उच्चतम स्थिति तक पहुँचती है। सृजनात्मक प्रवृत्तियों को इसी के द्वारा प्रोत्साहन मिलता है। सांस्कृतिक विकास की सारी सम्भावनाएँ इसी पर आधारित हैं। बुद्धि की प्रखरता एवं उससे मिलने वाले भौतिक अनुदानों का सही उपयोग विकसित भाव-सम्वेदनाओं द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

महापुरुषों द्वारा छेड़े जाने वाले अभियानों में इस तत्व को विकसित करने का ही महान लक्ष्य अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है। वे इस तथ्य से परिचित होते हैं कि इसको उभारे बिना मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर नहीं मोड़ा जा सकता। वे साधनों के विकास की उपेक्षा तो नहीं करते किन्तु उनको अधिक प्रधानता भी नहीं देते। उनकी सामर्थ्य मानवोचित गुणों के विकास के लिए ही प्रयुक्त होती है। साधना एवं अन्य आध्यात्मिक उपचारों के पीछे भी इसी उद्देश्य की पूर्ति ही निहित होती है।

आदर्शवादी भाव-सम्पन्नता से ही भौतिक उपलब्धियाँ भी मानव मात्र के लिए उपयोगी बन सकती हैं। बुद्धि की प्रखरता भावनाओं की उदात्तता से जुड़कर ही सर्वतोमुखी विकास का आधार प्रस्तुत कर सकती है। इस तथ्य को हृदयंगम कर उसे विकसित करने के लिए हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए। ★

शराब के नशे में चूर एक शराबी जब लड़खड़ाते जा रहा था तो रास्ते में मिले एक तिलकधारी पण्डित ने उससे कहा, "भाई इतनी अधिक भी क्या पीना, जरा सम्हल कर चलो अन्यथा गिर पड़ोगे।" शरावी बोला, पण्डित जी में तो शराबी हूँ ही—सब जानते हैं—गिर भी पड़ूँगा तो कोई जग हँसाई नहीं होगी, परन्तु आप जरा सम्हल कर रहिए अन्यथा यदि आप अपनी राह से फिसले तो आपकी जग हँसाई अधिक होगी।'

यह सुन पण्डित जी सावधान हो गये व सोचने लगे कि समाज दुर्गुणी व व्यसनी लोगों के दुर्गुणों,व्यसनों को उतना उपहासास्पद नहीं मानता, जितना सद्गुणी से दीखने वाले व्यक्तियों के दुर्गुणी व्यवहार को देखकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १९८२ में भूकम्पों की श्रृंखला

संसार के मूर्धन्य विचारक, भविष्यवक्ता, राजनेता, वैज्ञानिक और चिन्तक अपने-अपने ढंग से इन दिनों बार-बार यह कह रहे हैं कि अगले दिनों भयङ्कर विनाश की सम्भावनाएँ सामने आने वाली हैं। विचारक जीवन मूल्यों के ह्रास से उत्पन्न होने वाले सङ्कट और विग्रह की बात कहते हैं तो भविष्यवक्ता प्रकृति विक्षोभ की, राजनेता अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बढ़ते हुए तनावों के कारण चिन्ता व्यक्त करते रहे हैं तो प्रकृति विज्ञानी इस बात को लेकर चिन्तित हैं कि इन दिनों प्रकृति इतनी विक्षुब्ध हो उठी है कि अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, सुप्त ज्वालामुखियों के विस्फोट से लेकर महामारियाँ फैलने तक की अशुभ सम्भावनाएँ हैं।

अखण्ड-ज्योति के पिछले अङ्कों में विश्व के दो प्रसिद्ध खगोलशास्त्री जौन ग्रिबिन तथा स्टीफन प्लैगमेन द्वारा लिखी गई पुस्तक के उद्धरण प्रकाशित हुए थे जिनमें कहा गया था कि "सन् १९८२ में हमारे सौर-मण्डल के नवों ग्रह सूर्य के एक ओर पंक्तिबद्ध हो जाएँगे। चूँकि यह घटना ऐसे समय घटेगी जब सूर्य की गति-विधियाँ सर्वाधिक होंगी, इसलिए दुनिया भर के सभी क्षेत्रों में ऋतुएँ आश्चर्यजनक रूप से बदलेंगी। इस सौर घटना के परिणामस्वरूप पृथ्वी की परिक्रमा का क्रम गड़बड़ायेगा और विश्व के अनेक स्थानों में भूकम्प आएँगे।

१० अक्टूबर १९८० को अल्जीरिया में आए भूकम्प का उदाहरण इस सन्दर्भ में दिया जाता है और बताया जाता है कि उन दिनों जो भूकम्प आएँगे वे इस भूकम्प से भी भयावह भयङ्कर होंगे। समाचार पत्र पढ़ने वालों को उस भूकम्प के बारे में अच्छी तरह याद होगा जो उक्त तिथि को अल्जीरिया में आया था और जिसके परिणाम स्वरूप २५००० व्यक्ति मृत्यु के ग्रास बन गए थे तथा करीब २ लाख व्यक्ति बेघरबार और घायल हो गए। इस भूकम्प की खबर मिलते ही विभिन्न देशों के चिकित्सा दल, राहत दल और बचाव आदि कार्यों के लिए स्वयसेवी संस्थाओं ने अपने कार्यकर्त्ता, चिकित्सा तथा राहत सामग्रियाँ भूकम्प पीड़ितों के लिए भेजीं, परन्तु भूकम्प के कारण अल असनाम शहर तथा उसके आस-पास का क्षेत्र इस बुरी तरह तबाह हो गया था कि परि-वहन और संचार साधनों से भी कोई सम्पर्क नहीं हो सका। २४ घण्टे तक वह क्षेत्र दुनिया के मध्य में स्थित होते हुए भी दुनिया से अलग-थलग पड़ गया।

यह भूकम्प १५-२० सैकिण्डों तक सर्वाधिक तीव्र रहा। भूकम्प मापी यन्त्रों ने इसकी तीव्रता ७-५ रिचर स्केल दर्ज की। रिचर स्केल भूकम्प की तीव्रता मापने का एक स्केल है। १२ डिग्री रिचर स्केल सबसे तीव्र होता है जिसमें सर्वनष्ट का-सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। बड़ी-बड़ी चट्टाने और टेकरियाँ हवा में उड़ने-सी लगती हैं तथा तमाम भारी से भारी चीजें भी उछल कर कहीं की कहीं जा गिरती हैं। नदी नाले अपना रास्ता बदल देते हैं। बहुत बार तो खाइयाँ मुँद जाती हैं और जहाँ चट्टानें होती हैं वहाँ बड़े-बड़े खड्ड हो जाते हैं।

अल्जीरिया में आया भूकम्प तो एक मिसाल है। सूर्य की एक ओर एक सीध में नौ ग्रहों के इकट्ठा हो जाने पर इससे भी तीव्र भूकम्प के झटके आने की आशङ्का व्यक्त की गई है। उस समय सम्भावित भूकम्पों के कारण होने वाले विनाश का पूर्वाभास पूर्व कल्पना करने के लिए भूकम्पों के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि ये क्यों आते हैं? कैसे आते हैं? और क्या कोई ऐसी विधि है जिनके द्वारा भूकम्पों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सके कि अमुक समय पर भूकम्प आने वाला है? ताकि लोग पहले से ही सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकें।

वैज्ञानिकों के अनुसार हमारी पृथ्वी पहले कभी सूर्य का ही एक हिस्सा थी जो करोड़ों वर्ष तक सूर्य के समान ही जलती हुई गैसों का पिण्ड रही। गैस ठण्डी होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठोस रूप धारण करती गई तो ऊपर का धरातल सिकुड़ता गया और उसका भीतरी भाग बाद में ठण्डा हुआ। इस सिकुड़न के आन्तरिक दबावों के कारण पृथ्वी के भीतर दो बहुत बड़ी दरारें पड़ीं। एक दरार हिंदुकुश और कराकोरम पर्वत मालाओं से शुरू होती हुई हिमालय की तलहटी के नीचे होकर सुदूर पूर्व तक जाती है तथा दूसरी दरार यूरोप के अल्पस पर्वत से आरम्भ होकर आग्नेय एशिया के अधिकांश देशों के नीचे से होकर गुजरती है।

इन दरारों के ऊपर धरातल सहित भूमि का असीम दबाव पड़ता है। पृथ्वी के भीतर अभी भी हलचलें होती रहती हैं और जब कोई छोटी-सी हलचल भी इन दरारों के इर्द-गिर्द होती है, पृथ्वी की सतह काँपने लगती है। इसे ही भूकम्प कहते हैं। जब समुद्री क्षेत्रों में भूकम्प आता है तो जल प्रलय का सा दृश्य उत्पन्न हो जाता है। ९० से लेकर १०० फुट ऊँची तक लहरें उठने लगती हैं और यदि उस क्षेत्र के समीप ही कहीं जमीन हुई तो किनारे की लाखों एकड़ उपजाऊ जमींन खारे पानी में डूब जाती है।

भूकम्पों की भयावहता का एक छोटा-सा उदाहरण तो हाल ही में पिछले दिनों आया, अल्जीरिया का भूचाल है। इससे भयङ्कर भूकम्प भी आ सकते हैं। जिस यन्त्र के द्वारा भूचाल को मापा जाता है तथा इसके सम्बन्ध में थोड़ा बहुत पूर्वानुमान लगाया जा सकता है उसे सिस्मोग्राफ कहते हैं। यह यन्त्र धरती के हलके से हलके कम्पन को भी पकड़ लेता है। इसकी सूक्ष्मग्राहीता इतनी पैनी है कि भारत, चीन या जापान में कहीं अणु विस्फोट किया जाए तो उससे होने वाले कम्पन को अमेरिका में नोट किया जा सकता है और बताया जा सकता है कि अमुक स्थान पर अणु विस्फोट हुआ। किन्तु इस यन्त्र से भूकम्प का अनुमान दो चार सैकिण्ड पहले ही लगाया जा सकता है, जो व्यर्थ है क्योंकि इतने कम समय में किसी भी तरह के सुरक्षा उपाय सम्भव नहीं हो पाते और भूकम्प इतनी तेजी से आते हैं कि मात्र एक सैकिण्ड में वह लाखों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को पत्ते की तरह थर-थर कपा कर रख सकता है।

भूकम्प की विनाशकारी शक्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि रिचर स्केल यन्त्र पर नोट किये जाने योग्य भूकम्प की शक्ति करीब २०० परमाणु बमों के विस्फोट से होने वाले कम्पन के बराबर होती है। चूँकि इतने सामान्य से दिखाई देने वाले भूकम्प के कारण पृथ्वी में सैकड़ों मील भीतर होते हैं इसलिए सतह तक उनका प्रभाव नहीं ही दिखाई देता। १ डिग्री रिचर स्केल वाले भूकम्प के कारण धरती की सतह पर होने वाले कम्पन को बहुत कम लोग अनुभव कर पाते हैं। अधिकांश को तो इसका पता ही नहीं चलता। सामान्य भूकम्प की शक्ति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उतनी शक्ति द्वारा तीस किलोमीटर व्यास वाले करीब १२०० मीटर ऊँचे पर्वत को साढ़े तीन किलोमीटर ऊँचाई तक आसानी से उठाया जा सकता है।

कब कहाँ भूकम्प आ जाएगा? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हालांकि अब तक आये भूकम्पों के आधार पर वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे क्षेत्र अवश्य निर्धारित किये हैं जहाँ उनकी अधिक सम्भावना है। चीन और जापान सहित हिमालय तथा अल्पस पर्वत श्रेणियों की तलहटी में बसे क्षेत्रों में अधिक भूकम्प आते हैं, परन्तु यह कहने का कोई आधार नहीं है कि अमुक क्षेत्र में भूकम्प नहीं आएगा। वह कभी भी और कहीं भी आ सकता है और देखा गया है कि जिन क्षेत्रों में भूकम्प प्रायः नहीं आते, वहाँ जब कभी आते हैं तो अपेक्षाकृत बहुत उग्र होते हैं। किसी क्षेत्र में यदि भूकम्प आना बन्द हो गए हों और हजारों साल से उस क्षेत्र में भूकम्प नहीं आया हो तो भी नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्थान पर भूकम्प आने की सम्भावना नहीं है, वैसे क्षेत्रों में कभी भी भूकम्प के रूप में विनाशलीला का ताण्डव उठ खड़ा हो सकता है। अर्थात् पृथ्वी का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसे पूरी तरह भूकम्प से मुक्त कहा जा सके। हाल ही में अल्जीरिया में आये भूकम्प ने १२० किलोमीटर व्यास के क्षेत्र में भयङ्कर तबाही मचा दी थी।

भूकम्प कहाँ आ सकते हैं और कहाँ नहीं आते? इसका उत्तर जिस प्रकार निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता, उसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता कि किस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षेत्र में कब भूकम्प आ जाएगा ? यद्यपि विश्व के किसी भी क्षेत्र में कभी-कभी भूकम्प आ जाता है किन्तु चीन और जापान यह दो देश ऐसे हैं जहाँ का प्रत्येक नागरिक अपने जीवन काल में सैकड़ों बार काँपती हुई धरती के झटके सहते हैं। सबसे अधिक भूकम्प इन्हीं क्षेत्रों में आने के कारण वहाँ के वैज्ञानिकों ने भूकम्प का पूर्वानुमान लगाने के लिए कोई कारगर विधि खोजने के अथक प्रयास किये, परन्तु उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

इस तरह के प्रयोगों, अनुसन्धानों और अन्वेषणों से केवल इतना ही जाना जा सका कि पृथ्वी में निरन्तर प्रतिक्षण एक कम्पन होता रहता है, जिसे धरती का साँस लेना कहा जा सकता है। अध्ययन केन्द्रों से यह पता लगाया गया कि भूचाल आने के पूर्व यह कम्पन बीस गुना अधिक बढ़ जाता है। किन्तु कम्पन के बढ़ने और भूकम्प के आने में उतनी भी देर नहीं लगती जितनी कि रेल्वे स्टेशन के प्लेटफार्म पर रेल का इन्जिन दिखाई देने और उसके तुरन्त बाद गाडी के डिब्बे दिखाई पड़ने में लगती है। फिर भी वैज्ञानिक निराश नहीं हुए और उन्होंने अपना शोध कार्य जारी रखा। अगले चरणों में यह जाना जा सका कि पृथ्वी की सतह पर एक विशिष्ट प्रकार की सूक्ष्म विद्युत तरंग हर समय नाचती रहती है। भूकम्प आने के पहले वह अचानक बढ़ती है और तेजी से घटती है। उसके तुरन्त बाद भूकम्प आता है। किन्तु इन तरंगों के बढ़ने, घटने और भूकम्प आने में भी उतना अन्तर नहीं निकल सका कि इस बीच कोई सुरक्षा प्रबन्ध किये जा सकें। यह तभी सम्भव है जब पहले से जान लिया जाए कि अमुक समय तरंगे बढ़ेंगीं और इस अधिकतम बढ़ते रहने के बाद घटेंगी।

अभी तक वैज्ञानिक इस दिशा में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। अलबत्ता कुछ जीव जन्तुओं के व्यवहार को देखकर यह अनुमान अवश्य लगाया जा सका है कि उन्हें विद्युत तरंगों के बढ़ने और घटने का ज्ञान पर्याप्त समय रहते हो जाता है तथा वे अपना बचाव करने के लिए इधर-उधर भागने लगते हैं। १९६६ में चीन सरकार द्वारा भूकम्प की सम्भावना का पता लगाने के लिए बनाये गये कार्यक्रम में जनता से भी सहयोग लिया गया था और कहा गया था कि वे अपने क्षेत्र में कोई भी प्राकृतिक परिवर्तन कभी भी देखें तो उसे नोट करायें। लोगों द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर यह पता चला कि भूकम्प आने के पहले साँप और चूहे अपने बिलों से निकल कर इस कदर हड़बड़ा के भागने लगते हैं कि न चूहों को साँप का ध्यान आता है न साँप को चूहों पर दृष्टि जाती है, भले ही वे साथ-साथ ही क्यों न भाग रहे हों या हड़बड़ी में एक दूसरे से टकरा ही क्यों न रहे हों।

पृथ्वी के भीतर पड़ी दो प्रमुख दरारों का ही ऊपर जिक्र किया गया है। छोटी-मोटी दरारें तो अनेकों पड़ी हुई हैं जिनमें किन्हीं अज्ञात कारणों से कोई न कोई परिवर्तन होता रहता है और उसका परिणाम विनाशकारी भूकम्प के रूप में सामने आता है। ग्रिविन और प्लेमेग ने अपनी पुस्तक 'जूपिटर इफेक्ट' में लिखा है कि भूकम्प लाने वाली पृथ्वी की दरारों में हरकत का एक प्रमुख कारण पृथ्वी की चुम्बकीय धाराओं में होने वाले परिवर्तन भी हैं। सन् १९८२ में जब सौर मण्डल के ग्रह सूर्य के एक ही ओर एक ही सीध में आ जाएँगे तब पृथ्वी का चुम्बकीय बल तथा उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति असाधारण रूप से प्रभावित होगी। इन प्रभावों के कारण पृथ्वी की दरारों में विचित्र प्रक्रियाएँ, परिवर्तन होंगे जिनकी प्रतिक्रिया विनाशकारी भूकम्पों के रूप में उन दिनों हर कहीं दिखाई देगी।

क्या प्रकृति अपने ज्येष्ठ पुत्र मनुष्य की उच्छृङ्खलता, स्वच्छन्दता और प्रकृति मर्यादाओं का उल्लंघन करने का दण्ड इस प्रकार देने जा रही है ? या यह महाकाल का संहार आयोजन है ? किसी भी प्रश्न को उत्तर में हाँ कहा जाए, परन्तु इन सम्भावनाओं को दूसरे क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त की गईं सम्भावनाओं के परिप्रेक्षण में देखते हैं तो भावी विनाश से बचने या उसे टालने का फिलहाल तो ऐसा कोई उपाय नहीं दिखाई देता, जिसे अपनाकर इन खतरों से पूरी तरह सुरक्षित रहा जा सके।

—oOo—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निराश होने का कोई कारण नहीं

विश्व विख्यात ज्योतिर्विद और खगोल शास्त्री एरिग्मै बड़ी ही दुर्दिन भरी स्थितियों में पले और बड़े हुए थे। बचपन में उन्हें स्कूल जाने का अवसर बहुत कम ही मिला। स्कूल की अपेक्षा मेहनत मजदूरी कर उन्हें अपने और अपने परिवार के गुजारे के लिए अधिक समय देना पड़ा और बाद में तो इसे ही प्राथमिकता देनी पड़ी। परन्तु उनके मन में आगे बढ़ने और बड़ा आदमी बनने की आकांक्षा दबी हुई थी। किशोरावस्था में उन्हें सुझाई नहीं देता था कि वे किस प्रकार अपनी योग्यता बढ़ाने के लिए प्रयत्न करें? उस समय वे एक पुरानी किताबें बेचने वाले एक पुस्तक विक्रेता के यहाँ पुरानी और फटी हुई पुस्तकों की मरम्मत का काम किया करते थे। एक दिन वे किसी पुरानी किताब पर जिल्द चढ़ा रहे थे कि पास में रखी हुई रद्दी कागजों की ढेरी पर उन्हें हाथ से लिखा हुआ एक कागज का टुकड़ा दिखाई दिया। बरबस ही वे उसे उठाकर पढ़ने लगे। वह कागज एक पत्र की नकल था, जो डी० एलम्बर्ट नामक व्यक्ति ने अपने किसी मित्र को लिखा था। उस कागज पर लिखा हुआ था, "आगे बढ़ो श्रीमान्! आगे बढ़ो! जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे, तुम्हारी कठिनाइयाँ अपने आप दूर होती जाएगी और तुम देखोगे कि उन कठिनाइयों के बीच में से ही प्रकाश उदित हुआ है, जिसने उत्तरोत्तर तुम्हारा मार्ग आलोकित कर दिया है।"

जिस युवक को यह पत्र लिखा गया था, उसने पता नहीं कितनी प्रेरणा ग्रहण की, परन्तु एरिग्मै के लिए यह पंक्तियाँ मार्ग दर्शक बन गईं। उन्होंने यह काम करते हुए ही अपने प्रिय विषय की पुस्तकें पढ़ना आरम्भ किया। दुकान पर मरम्मत के लिए जितनी पुस्तकें आती थीं, उन्हें भी एरिग्मै उलट-पुलट लेते और इस स्वाध्याय क्रम से उन्होंने इतना लाभ उठाया कि आगे चलकर वे विश्व ख्याति स्तर के ज्योतिर्विद, खगोलवेत्ता और विविध विषयों के विद्वान बन गए।

संसार में जितने भी व्यक्ति सफल हुए हैं, अपने-अपने क्षेत्र में प्रगति के कीर्तिमान स्थापित कर सके हैं, उनमें से अधिकांश ने अपना जीवन साधारण परिस्थितियों में ही आरम्भ किया था। यद्यपि दुनिया में दोनों ही तरह के लोग होते हैं। कितने ही अच्छी स्थिति में देखे जाते हैं और कितने ही बुरी तथा दीन-हीन स्थिति में, विषम परिस्थितियों में अपना जीवन ज्यों-त्यों कर व्यतीत करते देखे जाते हैं। दीन-हीन और दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति जब अपने से ऊँची और अच्छी स्थिति के लोगों की ओर देखते हैं तो कुढ़कर रह जाते हैं कि भगवान का यह कैसा न्याय है? एक व्यक्ति तो इतना ऊँचा सम्पन्न या विद्वान जबकि उसके समान ही मैंने भी जन्म लिया हैं, मैं भी मनुष्य हूँ, मेरे भी दो हाथ दो पाँव और दो-दो आँख, कान हैं। फिर भी मेरी और सामने वाले की स्थिति में न पाया जाने योग्य अन्तर।

यह कुढ़न इस सन्तोष या संताप के विन्दु पर आकर समाप्त होती है कि हमारा भाग्य ही ऐसा है। ऐसा हमारी किस्मत में ही नहीं है। कदाचित हमारे भाग्य में भी ऐसी ही परिस्थितियाँ होतीं तो हम इससे भी अधिक और अच्छा कुछ कर दिखाते। इस प्रकार निराशा से संतप्त व्यक्ति अपनी दुर्दशा का सारा दोष परिस्थिति या भाग्य पर मढ़कर चुपचाप मन मसोस कर रह जाते हैं।

वस्तुस्थिति कुछ और ही होती है। जिन परिस्थिति को अपनी दुर्दशा या दीनता के लिए उत्तरदायी ठहरा जाता है, उनमें से अधिकांश अपनी ही उत्पन्न की होती हैं। जिन लोगों को आज ऊँची स्थिति में देखा रहा है, यदि उन्हें विरासत के रूप में कुछ मिला न तो, वे भी कभी उन्हीं की तरह साधारण और हीन स्थिति में थे और किसी को विरासत के रूप कुछ मिला भी है तो जिनसे विरासत में मिला है, उन्हें भी कष्टप्रद, बुरे और कठिन दिन देखे थे। उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थितियों में उन्होंने अपने पुरुषार्थ को तराशा है, प्रतिभा को निखारा है तथा प्रयासों की आग में अपने आपको तपाया है।

इस तरह के अगणित उदाहरण हैं, जिनमें साधारण स्थिति के व्यक्तियों ने परिश्रम, पुरुषार्थ, एकाग्रता, मनोयोग और निष्ठा के बल पर उन्नति के चरम शिखरों पर पहुँचाया। फोर्ड कम्पनी इस समय संसार में मोटर बनाने वाली सबसे बड़ी और सर्वाधिक विख्यात कम्पनी है। इस कम्पनी के संस्थापक थे—हेनरीफोर्ड। फोर्ड के कारखाने में बनी कारें सबसे ज्यादा मजबूत और टिकाऊ समझी जाती हैं और फोर्ड परिवार की गणना विश्व के सर्वाधिक सम्पन्न परिवारों में की जाती है। इस कम्पनी या उद्योग के संस्थापक हेनरी फोर्ड का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जिसमें प्रत्येक सदस्य को जीविका के लिए श्रम करना पड़ता था। उनके पिता एक छोटे से किसान थे। फोर्ड इसलिए अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके थे क्योंकि उनका परिवार उन्हें स्कूल कालेज, भेजने का खर्च उठाने की स्थिति में नहीं था।

किन्तु प्रयत्न, लगन और परिश्रम के बल पर उन परिस्थितियों में भी फोर्ड ने अपना व्यक्तित्व स्वयं निर्मित किया और असफलता की कई मंजिलें तय करते हुए सफलता के शिखर पर पहुँचे। जिनके कारखाने में छोटे से छोटा मजदूर भी साठ रुपये प्रतिदिन से कम नहीं कमाता, उस कारखाने के संस्थापक को इतना पारिश्रमिक प्राप्त करने के लिए महीने भर खपना पड़ता था। फोर्ड ने अपना प्रारम्भिक जीवन जिन परिस्थितियों में गुजारा उसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। उन परिस्थितियों के रहते हुए सफलता के शिखर पर पहुँचने का रहस्य उनकी लगन और निष्ठा को ही समझा जा सकता है।

मजदूरी करते हुए ही फोर्ड ने किशोरावस्था में संकल्प किया था कि वे कार बनाने का कारखाना खोलेंगे। उस समय यदि वे अपने लक्ष्य के बारे में किसी को बताते भी तो वह उन्हें शेखचिल्ली से अधिक महत्व नहीं देता। यहाँ तक कि उनके माता-पिता ने भी उन्हें सनकी और पागल कहा। किन्तु फोर्ड अपने स्वप्न को साकार करने के लिए अपने ढंग से काम करते रहे। वे दिन में मजदूरी करते और रात को एक मोटर कम्पनी में काम सीखने के लिए जाया करते। कबाड़ी के सामान से आखिर उन्होंने एक दिन कार का डिजायन तैयार कर लिया और वह कार कुछ दूर तक चली। यह दुनिया की पहली कार थी। इसके बाद तो सफलता ने जैसे अपना द्वार उनके लिए खोल दिया और वे एक-एक सीढ़ियाँ पार करते हुए मंजिल तक पहुँच गए। किन्तु इन वर्षों में उन्हें जितना कठिन परिश्रम और पुरुषार्थ करना पड़ा उतना श्रम अपने ध्येय के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित व्यक्ति ही कर सकता है।

सुई से लेकर रेल के इंजिन तक छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तुओं के निर्माता उद्योग समूह टाटा के संस्थापक जमशेद जी टाटा के सम्पन्न जीवन के सम्बन्ध में तो प्रायः सभी लोग जानते हैं, परन्तु यह जानने वालों की संख्या कम ही है कि उनका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसकी जीविका का आधार पुरोहिताई ही था। नवसारी में जन्मे और वहीं पले जमशेद जी को आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक जातीय बन्धु का सहयोग लेना पड़ा था। विद्यार्थी काल में वे एक ऐसी छत वाले कमरे में रहे जिसकी छत थोड़ी-सी भी बूँदा-बादी होने पर टपकने लगती थी। शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपनी व्यवहार कुशलता के बल पर ऐसे साथियों की टीम तैयार की, जिनके सहयोग से वे स्वयं का कारोबार चलाने योग्य साधन जुटा सके

सर्वप्रथम उन्होंने एक कपड़े का कारखाना खोला और इस प्रकार उद्योग जगत में प्रवेश किया। परिश्रम दृढ़ता तथा व्यवहार कुशलता के बल पर उन्होंने अपने कई साथी सहयोगी बनाये और उद्योगपति के रूप में प्रतिष्ठित हो सके। लोग अक्सर किसी का सहयोग नहीं होने की बात करते । स्मरण रखा जाना चाहिए कि हयोग न तो घर बैठे मिलता है और न ही अनायास। उसके लिए व्यक्ति को उद्यमी होने के साथ-साथ व्यवहार कुशल भी होना चाहिए, तभी वांछित सहयोग मिल पाता है और अभीष्ट परिस्थितियों का निर्माण होता है, जिसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधार पर आगे बढ़ पाना सम्भव होता है।

परिस्थितियाँ कितनी ही विषम और प्रतिकूल क्यों न हों, यदि व्यक्ति अपने कार्य को मनोयोग और तन्मयता के साथ पूरा करते रहे तो वह उन्हीं परिस्थितियों में आगे बढ़ता रह सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यों कितने ही राष्ट्रपति हुए हैं, परन्तु अब्राहम लिकन का नाम जितने आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है, वाशिंगटन को छोड़कर शायद ही किसी और राष्ट्रपति का लिया जाता हो। अब्राहम लिकन के पिता कुल्हाड़े और बन्दूक के सहारे अपना जीवनयापन करते थे। कुल्हाड़े से वे लकड़ियाँ कटते और बन्दूक से जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करते थे। अब्राहमलिकन के पिता अपने बच्चों को पढ़ाने-सिखाने योग्य सुविधा साधन भले ही न जुटा पाए हों, पर उन्होंने काम चलाऊ अक्षर ज्ञान और पढ़ने को अभिरुचि अवश्य जगा दी थी। यही कारण था कि लौपपोस्ट के उजाले में खाना पकाते समय चूल्हे में जलाई जाने वाली आग की रोशनी में वे पुस्तकें पढ़ा करते, क्योंकि दियावत्ती का प्रबन्ध भी मुश्किल से हो पाता था और ऐसी परिस्थितियों में पढ़े-लिखे लिकन जीवन में बारबार असफल होने पर भी हिम्मत न हारे तथा अमेरिका के राष्ट्रपति बनने में सफल हुए।

अमेरिका में दूसरे दर्जे का जीवन बिताने वाली गोरे लोगों की दासता के चक्र में पिसने वाली मूल जाति नीग्रो में जन्म लेने वाले कॉर्वर को भी अपने जीवन में क्या-क्या पापड़ नहीं बेलने पड़े थे? वे ऐसे परिवार में जन्मे थे, जिसका सारा जीवन ही उसके स्वामी के इशारों पर कठ-पुतली की तरह नाचता था। यहाँ तक कि उन लोगों को अपने बच्चों की व्याह शादी भी अपने मालिक की मर्जी के अनुसार करनी पड़ती थी। क्योंकि बच्चे उनकी सन्तान नहीं, उनके मालिक की सम्पत्ति होती थे। फिर भी आज्ञाकारिता, नियम-निष्ठा और विश्वास के बल पर जार्ज कॉर्वर ने अपने मालिक को प्रसन्न कर उससे कुछ सुविधाएँ हस्तगत कर लीं और उनका उपयोग अपने विकास में करने लगे। भविष्य के प्रति आशावान और वर्तमान के प्रति उत्साहपूर्ण तथा जागरूक रहते हुए उन्होंने अपने जीवन को इस प्रकार सँवारा कि सफलता के उस शिखर पर जा पहुँचे, जिसके कारण कि उन्हें वैज्ञानिक ऋषि कहा जाने लगा।

शिक्षा और विद्वत्ता के सम्बन्ध में तो लोग बहुधा ही परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं, सोचते हैं कि यदि अच्छे घर में जन्म न हो, पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ न मिले, उपयुक्त परिस्थितियाँ यदि उपलब्ध न हों तब तो आदमी कुछ कर ही नहीं सकता। जबकि सचाई यह है कि अन्य क्षेत्रों में परिस्थितियाँ भले ही कुछ सहायता कर जाएँ, विद्या और ज्ञान के सम्बन्ध में तो उनका जरा भी वश नहीं चलता। अनुकूल परिस्थितियाँ होते हुए भी कई धनवानों के बच्चे अनपढ़ और गँवार रह जाते हैं तथा परिस्थितियाँ व साधन न होते हुए भी कितने ही गरीब बच्चे विद्वान और ज्ञानी बन जाते हैं। कालिदास सूरदास, तुलसीदास से लेकर प्रेमचन्द, शरतचन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, निराला, रत्नाकर आदि कितने ही विद्वान साहित्यकार हुए हैं जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत कम अच्छी रही है या दुर्दशाग्रस्त ही रही है। फिर भी उन्होंने निजी प्रयासों और तप साधनाओं के बल पर जगत को कुछ दे पाने में सफलता प्राप्त की।

सफलता और उत्कर्ष आन्तरिक उपलब्धि है जबकि अच्छी स्थिति और अनुकूल परिस्थितियाँ बाहरी साधन। ठीक उसी प्रकार जैसे अन्न भंडार के मालिक का आहार की दृष्टि से स्वस्थ और पोषक अन्न ग्रहण कर पाना कोई आवश्यक नहीं है। यदि पेट की कोई बीमारी हो तो मनों अनाज भरा होने पर भी पाव भर रोटी हजम कर पाना मुश्किल है और जिसे खुलकर भूख लगती है उसे उद्यम करने के लिए उठ खड़ा होना ही पड़ेगा। आन्तरिक विशेषताओं को, मनःस्थिति और क्षमताओं को यदि उपयुक्त दिशा में मोड़ा तथा जगाया जाय तो लाख परि-स्थितियाँ बाधक हों, सूरमा योद्धाओं की तरह विजय के गढ़ पर सफलता के ध्वज लहराने का अवसर आकर ही रहेगा, मिल कर ही रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वसमर्थ शक्ति के अवतरण का उद्घोष

"सन् १९९१ तक संसार में भयङ्कर उथल-पुथल होगी। आबादी का एक बड़ा भाग आन्तरिक युद्धों से विनष्ट हो जायेगा। प्रकृति भी इन्हीं दिनों सर्वाधिक विक्षुब्ध होगी। मानवी दुष्कृत्यों के फलस्वरूप उत्पन्न अनेकों संकटों एवं प्रकृति विक्षोभों की दोहरी मार से उत्पन्न हृदय विदारक दृश्यों की कल्पना मात्र से मेरा हृदय काँप उठता है।"

"ब्रिटेन के प्रसिद्ध लोक-कथाओं के लेखक 'एडिक मेयल' ने 'मां शिप्टन' की भविष्यवाणियों का उल्लेख किया है जिसका प्रकाशन १६ मई १९७० दैनिक विश्व मित्र कलकत्ता में हुआ था। मां शिप्टन की गुफा इग्लैंड के याकसायर में प्रख्यात है। गुफा में एक कब्र है जिसके निकट अंग्रेजी में पंक्तियां खुदी हुई हैं उसका भावार्थ इस प्रकार है। उस पवित्र स्थान पर वह महिला सोई हुई है जिसने अपने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला। जिसकी अद्भुत अतीन्द्रिय सामर्थ्य की परीक्षा अनेकों बार की गई किन्तु हर बार सत्य सिद्ध हुई।"

'मदर शिप्टन' की कब्र सोलहवीं शताब्दी की है। आज से चार सौ वर्ष पूर्व उसने भविष्य के विषय में जो कुछ भी कहा था, वह सब गुफा के ऊपर अङ्कित है। उपरोक्त भविष्यवाणी उनकी अन्तिम है जिसका अन्तिम अंश इस प्रकार है और तब आकाश से एक शक्ति का पुञ्ज अवतरित होगा जो दुनिया को तबाही से बचायेगा। जब उसका तेजस्वी स्वरूप संसार के समक्ष प्रकट होगा तो लोग उसके पीछे चलने लगेंगे। बीसवीं सदी के अन्तिम बीस वर्षों में संसार के लिए उसकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होगी। भारत के किसी उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र से वह अपनी सशक्त विचारधारा से समस्त विश्व को प्रभावित करेगा।'

सङ्कलनकर्त्ता "एडिक मेयल" का कहना है कि 'मदर शिप्टन' की सभी भविष्यवाणियां अपने समय पर अक्षरशः सही निकली हैं। उस अद्भुत महिला का जन्म सन् १४८८ में हुआ था। वह एक अवैध सन्तान थी। लोक लज्जा के कारण उसकी माँ बचपन में ही उसे छोड़ कर कहीं अन्यत्र चली गई। पालन-पोषण एक किसान ने किया था, उसकी अतीन्द्रिय क्षमताएं बचपन में ही प्रकट होने लगी थीं। जब वह विद्यालय जाने लगी तो अध्यापकों को यह देखकर भारी अचरज हुआ कि वह पढ़ना-लिखना, पहले से ही जानती है। कठिन से कठिन प्रश्नों का उत्तर बिना पढ़े-लिखे ही दे दिया करती थी। कई बार तो अध्यापकों के घर पर घटी घटनाओं का वर्णन उनके समक्ष इस प्रकार करती थी जैसे सारी बातें उसके सामने ही घटित हुई हों। अपनी बदसूरती एवं चमत्कारी व्यक्तित्व के कारण वह कुछ ही दिनों में प्रख्यात हो गई। चौबीस वर्ष की अवस्था में शिप्टन का विवाह एक बढ़ई से हुआ।

'मेयल' का कहना है कि मदर शिप्टन का सम्बन्ध सूक्ष्म जगत से था। चार सौ वर्ष पूर्व की गई भविष्यवाणियाँ शत-प्रतिशत सही निकली हैं, इसकी पुष्टि इतिहास की घटनाओं से मिलती है। मदर शिप्टन के अङ्कित भविष्य कथनों में सन् १६६६ का लन्दन का प्रसिद्ध अग्निकाण्ड तथा भयंकर प्लेग द्वारा हजारों व्यक्तियों की मृत्यु होना, 'रायमेरी की हत्या और 'ओलिवर क्रामवेल' द्वारा वितानी गृह युद्ध का सूत्रपात अपने समय पर सही सिद्ध हो चुके हैं। कुछ भविष्यवाणियां अलंकारिक ढंग से की गई थीं जो इस प्रकार थीं।

"याक नगर की ट्रिनिटी चर्च की मीनार पर एक औरत गाड़ी में बैठ कर जायेगी।" यह अटपटी बात उन दिनों समझ में न आ सकी। किन्तु एक समय इग्लैंड में भयंकर बाढ़ आयी जिसके कारण चर्च की मीनार और निकटवर्ती एक पुल ध्वस्त हो गये। पुल के निर्माण में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीनार में लगी डण्टे प्रयुक्त हुई। पुल बन जाने के बाद उसके उद्घाटन के लिए गाड़ी में बैठकर एक प्रख्यात महिला आयी उसके बाद उस पर से नित्य हजारों व्यक्ति गुजरने लगे।

"बिना घोड़े की गाड़ियाँ दोड़ेंगी और दुर्घटनाएं संसार को कराहों से भर देंगी।" सर्वविदित है कि पन्द्रहवीं सदी तक गाड़ियों को खींचने के लिए एक मात्र साधन घोड़े थे। उस समय तक बिना घोड़े के चलने वाले वाहन प्रकाश में नहीं आये थे। शिप्टन का भविष्य उद्-घोष पेट्रोल, तेल, डीजल आदि से चलने वाले वाहनों के आविष्कार की ओर संकेत था। मोटर, कार, स्कूटर, रेल जैसे वाहनों की उन दिनो कल्पना भी नहीं थी।

इसी तरह की अन्य रोचक किन्तु विचित्र भविष्य-वाणियाँ मदर शिप्टन ने की थी। "हवा में मनुष्य दिखाई देंगे, सफेद में, काले में और हरे में।" यह हवाई जहाज, हेलीकाप्टर, राकेट के आविष्कार की कल्पना थी जो अब साकार हो चुकी है।

"पलक झपकाने जितने समय में संसार भर में विचार एक छोर से दूसरे छोर तक तैरेंगे।" वायरलेस, रेडियो, टेलीविजन आदि के निर्माण की यह भविष्यवाणी थी जो इन दिनों सारी दुनिया पर छाये हुए हैं। इन माध्यमों से सैकिण्डों में एक देश के विचार दूसरे देश तक पहुँच जाते हैं। "मनुष्य पानी के अन्दर चलेंगे, सवारी करेंगे तथा उसमें विश्राम करेंगे। उन दिनों यह कल्पना भी नहीं थी कि पनडुब्बी जैसे सशक्त जलवाहन बन सकेंगे।

विश्व की वर्तमान परिस्थितियों पर दृष्टि दौड़ाने पर मदर शिप्टन की अन्तिम भविष्यवाणी भी साकार होते दिखाई पड़ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्वार्थों की आपा-धापी के लिए जो दुष्चक्र चल रहे हैं उनसे लगता है कि—"किसी भी क्षण विश्व युद्ध का सूत्रपात हो सकता है। पिछले युद्धों का दुष्प्रभाव सीमित रहा है। परमाणु रूपी दैत्य के पकड़ में आ जाने से अगले दिनों यदि युद्ध छिड़ता है तो व्यापक और चिरस्थायी प्रभाव छोड़ेगा। छोटे-मोटे युद्धों का सिलसिला तो जारी है। ईराक और ईरान के बीच युद्ध पूरे विश्व को प्रभावित कर रहा है। यह मात्र दो देशों का आपसी मामला नहीं रहा। अन्त-राष्ट्रीय क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन तनाव बढ़ता जा रहा है जो कभी भी विश्व युद्ध का रूप धारण कर सकता है। इस नव दशक को मनुष्य जाति के जीवन-मरण का वर्ष समझा जा सकता है।

प्रकृति विक्षोभ इन्हीं दिनों अधिक दिखाई पड़ रहे हैं। वृष्टि; अतिवृष्टि, भूकम्प, तूफानों से जितनी तबाही हो रही है उतनी पहले नहीं होती थी। औद्योगीकरण की अन्धी और अदूरदर्शी नीति से वातावरण में विष घुलता जा रहा है। प्रकृति प्रकोपों में प्रकारान्तर से मानवी दुष्कृत्य ही कार्य करते हैं।

ऐसी ही विषम परिस्थितियों में किसी सर्व समर्थ शक्ति के अवतरण की भविष्यवाणी मदर शिप्टन ने की है। चार सौ वर्ष पूर्व इनके भविष्य कथन अपने समय पर शत-प्रतिशत सही सिद्ध हुए हैं। अन्तिम का भी समय आ चुका है तथा उसका छुट-पुट परिचय सूक्ष्म जगत में मिलने लगा है। अपनी तथाकथित प्रगति के अन्धी दौड़ से प्रगतिशील कहे जाने वाले विचारशील वर्ग ने ऊब कर एक बार नये सिरे से सोचना आरम्भ किया है। अब सर्वत्र यह सोचा जा रहा है कि विगत भौतिक प्रगति की ओर एकांगी दौड़ खतरनाक थी। विश्व मानस' यह सोचने को बाध्य हुआ है। मानवी गरिमा एवं विशेषताओं की अवहेलना करके विश्व शान्ति को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। यदि कुछ ठोस कदम नही उठाये गये, विगत ढर्रे एवं भौतिकवादी चिन्तन को नहीं बदला गया तो मनुष्य की अपनी ही दुर्बुद्धि उसे मार डालेगी।

यह तो विश्व के मूर्धन्य विचारशीलों का चिन्तन है जो इन दिनों पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशन में आ रहे हैं। कारण के बिना कोई क्रिया नहीं होती। सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि कोई समर्थ शक्ति विश्व मनीषा को झकझोर रही है तथा उनके चिन्तन में अभीष्ट हेर-फेर के लिए हलचल मचा रही है। इन सूक्ष्म प्रेरणाओं को ही किसी सर्व समर्थ शक्ति के प्राकट्य का संकेत समझा जा सकता है जिसका उल्लेख मदर शिप्टन ने अपनी भविष्यवाणियों में किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वस्थ मन-स्वस्थ शरीर

प्लेटो ने कहा था कि—"आत्मोपचार की अवहेलना करके शरीर के उपचार का कभी प्रयास नहीं किया जाना चाहिये।" स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रयुक्त अनेक शब्दों की उत्पत्ति चिकित्सा और अध्यात्म दोनों ही से हुई है। अंग्रेजी में इसे 'हेल्थ' कहते हैं जो ग्रीक शब्द 'हील्थ' का अपभ्रंश है। इसका अर्थ है पूर्णता, समग्रता, अक्षुण्णता। इसी हील्थ शब्द से अंग्रेजी का 'होली' शब्द निकला है अर्थात पवित्रता। होली व्यक्ति न केवल पवित्र होता है वरन् वह 'होल' अर्थात पूर्ण पुरुष होता है। इस सबका आशय यह कि अध्यात्मवादी एवं पवित्र आदमी वही है जो पूर्ण है और पूर्ण वही है जो समग्र रूप से स्वस्थ है। इस प्रकार स्वास्थ्य और अध्यात्म एक-दूसरे के साक्षीदार हैं, न केवल साक्षीदार अपितु एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़े हुए हैं।

इसाई धर्म में प्रारम्भिक दिनों में चर्च ही अस्पताल हुआ करते थे, जहाँ आत्मा, मन व शरीर तीनों ही का उपचार हुआ करता था। जिसकी आत्मा शुद्ध है, निष्पाप है उसका मन एवं शरीर कैसे विकृत, चिन्तन तथा असन्तुलन की ओर बढ़ सकता है। 'प्रायश्चित्त प्रक्रिया' (कन्फेशन) के रूप में यह चर्च संस्था चिकित्सा का कार्य करती रही। मध्यकाल में बहिरंग पर ही दृष्टि केन्द्रित हो जाने से पत्तियों को ही सुधारने, सँवारने का कार्य चला, जड़ पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। शारीरिक सुख एवं भौतिक सम्पदा समृद्धि ही सब कुछ है—इसी पर जोर दिया जाता रहा। रोगों का बाहुल्य हुआ एवं समृद्धि के अपरिमित साधनों के बावजूद मानसिक अशान्ति एवं शरीरगत व्याधियाँ बढ़ती चली गयी। पिछले दिनों इस भूल को पाश्चात्य जगत के कुछ विद्वानों ने अनुभव किया है। अब वहाँ पेस्टर (पादरी), साइकेट्रिस्ट (मनश्चिकित्सक) एवं फिजिशियन (कायचिकित्सक) की सम्मिलित टीम द्वारा रोग निदान एवं उपचार की प्रक्रिया पूरी की जाती है।

ऐसे ही एक पादरी नार्मन विन्सेंट पील न केवल ईसाई जगत में अपितु विचारकों एवं चिकित्सकों के मध्य भी अपने जीवनदर्शन सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचारों के कारण जाने जाते हैं। जीवन के साधारण व्यावहारिक प्रश्नों को वे अधिक महत्व देते हैं, अन्य सामान्य ईसाई धर्मगुरुओं की तरह उनकी अपेक्षा नहीं करते। स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार उतने ही ज्वलन्त एवं प्रखर है। वे कहते हैं 'मेडीकेट' एवं मेडीटेट' दोनों शब्दों का एक ही उद्गम है। 'मेडीटेट' का अर्थ है 'दवा करना' एवं 'मेडीकेट' का अर्थ है 'ध्यान करना।' रोगमुक्ति तभी सम्भव है जब हम ध्यान करें। यह ध्यान चाहे अपने स्वयं के चिन्तन के विषय में हो, चाहे अपने पिछले कर्मों के विषय में अथवा विधेयात्मक भविष्य की रूपरेखा बनाने के रूप में।

बाइबल के 'एक्सोडस' ग्रन्थ में लिखा है—"यदि हम उस परमपिता के निर्देशानुसार चलेंगे, प्राकृतिक जीवन जीयेंगे एवं कभी निषेधात्मक दृष्टि से विचार नहीं करेंगे तो रोग हमारे पास भी नहीं फटकेगा।"

वे कहते हैं कि हममें से कितने हैं जो भौतिक शरीर के स्वामी बनने का प्रयास करते हैं। सही रूप में इस शरीर का, भगवान के अनुदान का यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति उपयोग करे तो वह क्या नहीं कर सकता? बैंक रिच नामक अपने मित्र के जीवन से सम्बन्धित एक घटना श्री पील बताते हैं। वह बेसबाल का प्रसिद्ध खिलाड़ी था, पर अपने उस हाथ को अधिक महत्व देता था, जिससे वह खेलता था। इसके लिये उसने ७५ हजार का बीमा भी करा रखा था। उसका कहना था कि "दैनिक प्रैक्टिस के लिये नहीं, किसी बड़े खेल के लिये मैंने अपने हाथ को सुरक्षित रखा है लेकिन उस 'बड़े खेल' का कभी मौका ही नहीं आया। उपयोग न करने से वह अपने क्रीड़ाकौशल को ही भूल गया। प्रयुक्त होने पर ही शरीर की एवं मन की कार्यक्षमता बढ़ती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यदि इन्हें समुचित रूप में, ईश्वर के निर्देशानुसार उपयोग करने का प्रयास किया जाय तो हर व्यक्ति गतिशील, उत्साह युक्त एवं उल्लासमय जीवन व्यतीत कर सकता है। इसके लिये प्राथमिक आवश्यकता बताते हुए श्री नार्मन विंसेंट पील कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन में स्वस्थ विचारों को स्थान देना चाहिये। मन के कुविचार ही शरीर में प्रवाहित होकर उसे रोग युक्त कर देते हैं। न्यू आटलिस के एक अस्पताल में एक सर्वेक्षण में ५०० में से ३८३ रोगी (७७ प्रतिशत) शारीरिक जाँच के बाद स्वस्थ पाये गये, पर जब उनसे गहराई से प्रश्न किये गये तो उनके अस्वास्थ्यकर निषेधात्मक विचार ही रोगों का कारण थे। प्रतिदिन अपने मन को गन्दे विचारों से मुक्त करने का नियमित प्रयास करने के आध्यात्मिक निर्देश पाकर वे सभी स्वस्थ होकर चले गये। सद्भाव एवं सत्चिन्तन ही सद्कर्म तथा स्वस्थ शरीर को जन्म देते हैं, यह एक अनुभूत अकाट्य सत्य है।

एक महिला गम्भीर रूप से बीमार हो उपचारार्थ अस्पताल में भरती थी। अपने दुःख, कष्टों के लिये वह भाग्य एवं भगवान को निरन्तर कोसती रहती थी। सारे उपचार व्यर्थ जा रहे थे। इसी बीच किसी शुभ चिन्तक रिश्तेदार ने उसे एक पुस्तक लाकर दी—जिसमें आशावादी चिन्तन को महत्ता दी गयी थी। किताब का शीर्षक था "बेटर हेल्थ थ्रू पॉजिटिव थिंकिंग" (विधेयात्मक चिन्तन से उत्तम स्वास्थ्य)। उसे पढ़ते ही उसका चिन्तन आमूलचूल बदल गया। चिन्ता एवं निराशा को मन से निकाल फेंका उसने मन में अच्छे विचारों को जगह देने का संकल्प लिया।

निराशावादी चिन्तन वस्तुतः बहुत ही खतरनाक होता है। यह वैसे प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर नहीं होता, इसीलिये इसकी गम्भीर भयावहता तब तक समझ नहीं आती जब तक कि वह शरीरगत व्याधि का रूप न ले ले। डा० शिडलर नामक एक विख्यात चिकित्सक जो विस्कांसिन (अमेरीका) में अध्यात्म चिकित्सा करते थे—कहा करते थे, अधिकांश लोगों की बीमारी का कारण सी, डी, टी, होता है। पूछने पर वे व्याख्या करते हुये बताते कि—'सी' अर्थात् केयर (चिन्ता) डी—अर्थात् डिफिकल्टीज (कठिनाईयाँ) और टी—अर्थात् ट्रबल्स (कष्ट) इन तीनों की परिणिति मानसिक निराशा में होती है। कोई इंजेक्शन, औषधि उपचार ऐसे रोगी को स्वस्थ नहीं कर सकता। उनकी सलाह मात्र यही थी कि "प्रतिदिन कम से कम दस मिनट तो प्रसन्न रहो और देखो तुम कैसे स्वस्थ होते चले जाते हो।"

जेम गिल्बर्ट एक प्रसिद्ध अंग्रेज टेनिस खिलाड़ी थी। उसकी मृत्यु बड़े दुःखद ढंग से हुई। जब वह छोटी थी, उसकी माँ दन्त चिकित्सक के पास अपना दाँत निकलवाने गयी। जैसे ही वे दन्त चिकित्सक की कुर्सी पर बैठीं, हृदयाघात, जो कि मात्र एक संयोग था, के कारण वहीं प्राण खो बैठीं। इस घटना ने गिल्बर्ट को काफी भयभीत कर दिया। यह तस्वीर आगामी तीस वर्षों तक उसके मस्तिष्क पटल पर छाई रही। दाँत के कष्ट ने उसे कई बार परेशान किया पर अचेतन में घुसे भय ने उसे चिकित्सक के पास जाने से रोक दिया। एक बार जब कष्ट असहनीय हो गया, तो उसे जबर्दस्ती चिकित्सा हेतु ले जाया गया। जैसे ही वह दन्त चिकित्सक की कुर्सी पर बैठी, उसके सामने फिर वही दृश्य घूम गया और तुरन्त उसकी मृत्यु हो गयी। यह उदाहरण बताता है कि चिन्ता, डर एवं निराशा किस प्रकार स्थूल शरीर को इस सीमा तक प्रभावित करते हैं।

जीवनी शक्ति को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करना एवं उसका दैनदिन जीवन में अभ्यास करना स्वस्थ रहने के लिये बहुत आवश्यक है। हम जो भी कुछ कहते हैं, वहा हमारे विचारों में हीता है और जो कुछ विचारों में हाता है, वह निश्चित ही जीवन के क्रिया-कलापों में रूपान्तरित होता है। बीमारी तभी हम पर हावी होती है, जब जीवनी शक्ति क्षय होती चली जाती है। ईश्वर की स्वास्थ्यदायक शक्ति हर समय हर व्यक्ति—जीवधारी के शरीर, मन व आत्मा को अनुप्राणित करती रहती है। जितने भी व्यक्ति दीर्घकाल तक जिये हैं, जीवन, जीने की विधा के कारण ही स्वस्थ रह पाये हैं। यदि इस सूत्र का अनुसरण किया जा सके तो हर क्षण, हर पल उल्लास पूर्ण रीति से जिया जा सकता है। ★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

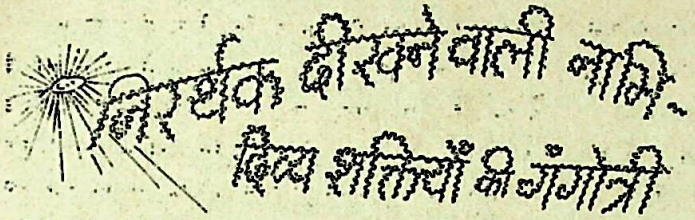

अध्यात्म में नाभि को उतना ही महत्व दिया गया है, जितना वैज्ञानिक परमाणु में न्यूकलियस को देते आये हैं अथवा सौर-मण्डल में सूर्य का माना जाता है। नाभि की महत्ता शरीर शास्त्रियों के लिए गौण हो सकती है, पर आत्मविज्ञान का कथन है कि नाभिचक्र का चुम्बकत्व आजीवन बना रहता है। गर्भाशय में भ्रूण का पोषण माता के शरीर से होता है। बुलबुले की तरह अपना अस्तित्व प्रारम्भ करने वाला भ्रूण तेजी से बढ़ना प्रारम्भ करता है। निर्वाह एवं सतत् पोषण हेतु उसे जिस भण्डार की आवश्यकता है, वह अनुदान शिशु को माता के शरीर से अपनी नाभि के मुख से प्राप्त होता है। पका हुआ आहार माता के रक्त के माध्यम से वह निरन्तर प्राप्त कर अपनी विकास यात्रा प्रारम्भ रखता है। प्रसव के समय जिस नालरज्जु को काट कर माता व शिशु को अलग किया जाता है। यह नाल, जो बालक की नाभि से जुड़ी होती है, ही वह द्वार है, जिससे माता के शरीर से आवश्यक रस द्रव्य बालक के शरीर में आता रहता है। नौ मास की पूरी अवधि में अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति वह नाभि मार्ग से ही करता है।

जन्मोपरान्त बालक रोता, हाथ-पैर चलाता है और रक्त संचार आरम्भ हो जाता है। हृदय से रक्त फेंफड़ों में जा पहुँचता है व वे अपना काम आरम्भ कर देते हैं। प्राणवायु को अपने रक्त में वातावरण से खींचकर स्वाभ-लम्बन का पहला चरण नवजात बालक पूरा करता है। अब माता के गर्भाशय में बैठे 'प्लेसेन्टा' रूपी फेंफड़ों की उसे आवश्यकता नहीं रह जाती। माँ व बालक के बीच सम्बन्ध विच्छेद नाल को काट कर किया जाता है। नवजात शिशु की जीवनयात्रा अपने ढर्रे पर चलने लगती है। माता का सहयोग समाप्त होते ही उस केन्द्र की उपयोगिता भी समाप्त हो जाती है। स्थूल दृष्टि से चिकित्सकों की दृष्टि में इस केन्द्र की उपयोगिता एक सामान्य गड्ढे के रूप में ही रह जाती है। कुछ निरर्थक निष्क्रिय सूत्रों के माध्यम से (लिगामेण्टम टेरिस) नाभि लीवर से जुड़ी रहती है। शरीरगत विकास की दृष्टि से नाभि की भूमिका समाप्त तो हो जाती है, पर जब भी कभी लीवर पर दबाव पड़ता है, उसमें रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है; तब ये ही निष्क्रिय सूत्र जीवन्त हो जाते हैं व 'केपट मेड्यूसि' के रूप में फूली शिराओं के स्वरूप में दिखाई देते हैं।

यह सारी गाथा एक ही तथ्य का उद्घाटन करती है कि नाभि एक सक्रिय केन्द्र है जो अपनी उपयोगिता की अवधि में अपनी सामर्थ्य से भ्रूण के विकास में सहयोग देती है। बाद में वह निष्क्रिय नहीं हो जाती। जिस तरह मस्तिष्क का, सूक्ष्म शरीर का केन्द्र आज्ञाचक्र माना गया है, स्थूल शरीर का न्यूकलियस नाभि है। इस केन्द्र का सशक्त होना स्वस्थ शरीर का चिन्ह है। इसी की क्षमता से समीपवर्ती अवयव प्राणवान बनते हैं। नाभि केन्द्र के क्रिस्टल में आदान-प्रदान की उभय-पक्षीय क्षमता विद्यमान है। वातावरण में व्याप्त ध्वनि तरंगों को ट्रांजिस्टर का क्रिस्टल ही पकड़ कर उन्हें श्रव्य ध्वनियों में परिवर्तित करता है। नाभि केन्द्र ब्राह्मीचेतना का न्यूकलियस है। अनन्त अन्तरिक्ष से आवश्यक शक्ति खींचना और उसे धारण कर शरीर के समस्त अंगों को प्रभावित करना अध्यात्म विज्ञान के अनुसार नाभि का ही कार्य है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से नाभि का भले ही वह महत्व न हो पर योग विज्ञान की दृष्टि से उसकी उपयोगिता आजीवन वैसी ही बनी रहती है, जैसी कि भ्रूणावधि में थी। नाभि चक्र के चुम्बकत्व को साधनायोग द्वारा जागृत किया जा सके तो अपनी प्रखर आकर्षक क्षमता के सहारे वह इतना कुछ अदृश्य अनुदान प्राप्त कर सकने में सफल हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती है जो स्थूल पदार्थों की अपेक्षा कई गुना अधिक उपयोगी है।

शरीर शास्त्र की दृष्टि से नाभि के आस-पास नौ महत्वपूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (गैंगलियान्स) हैं। ये ओटोमेटिक नर्वस सिस्टम (स्वचालित स्नायु संस्थान) के वे केन्द्र हैं जो शरीरगत गतिविधियों, रक्त प्रवाह, पाचन में सहायक एन्जाइम्स अन्य रसों के स्राव का नियमन संचालन करते हैं। लम्बर, सेक्रल एवं काक्सीजियल गैंगलियान व इनके परस्पर सूत्रों के रूप में विद्यमान प्लेक्ससेज ही आमाशय-पाचन संस्थान, तिल्ली, गुर्दे, यकृत आदि महत्वपूर्ण अंगों का संचालन करते हैं। नये शरीर का निर्माण करने वाली प्रजनन प्रणाली (गोनेड्स) अपनी अद्भुत क्षमताओं सहित इन्हीं केन्द्रों के नियन्त्रण में काम करती हैं। इन सबकी फलश्रुति के रूप में दृश्य हाड़-मांस का पुतला यह शरीर अन्नमय कोष की अधीनता में तो है, पर स्वयं कोष नहीं है। देह तो नष्ट हो जाती है, पर अन्नमय कोष सूक्ष्म रूप में इच्छाओं, तृष्णाओं के रूप में जिन्दा रहता है।

मनुष्य के प्राण-शरीर में तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं जिनके माध्यम से प्राण प्रवाहित होता है। ये हैं—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना। इड़ा-पैरासिम्पेथेटिक सिस्टम-शामक संस्थान का प्रतिनिधित्व करती है। यह मनुष्य का शान्त; अन्तर्मुखी एवं मनोगत पक्ष हुआ। पिंगला सिम्पैथेटिक सिस्टम अर्थात् उत्तेजक संस्थान की प्रतिनिधि है। यह जीव का सक्रिय, बहिर्मुखी एवं शरीरगत पक्ष है। दोनों के परस्पर सन्तुलन-सामंजस्य से ही सारी गतिविधियाँ क्रमबद्ध रूप से चलती हैं। पाचन प्रक्रिया के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता शरीर को होती है, वह दोनों नाड़ियों के प्राण प्रवाह से बनती है। नाभि के पीछे स्थित सोलर प्लेक्सस वह केन्द्र बिन्दु है, जहाँ से सारी प्रमुख धाराएँ विभिन्न अंगों को जाती हैं। एक प्रकार से इसे जंक्शन स्टेशन की उपमा दी जा सकती है, जहाँ से अनेकों रेल्वे लाइन विभिन्न दिशाओं में जाती हैं। सारे शरीर में स्फूर्ति इसी केन्द्र की सशक्तता पर निर्भर है। जिस भी व्यक्ति ने इस केन्द्र को साध लिया अर्थात् अन्नमयकोष की साधना कर ली, उसकी इन्द्रियाँ काबू में रहती हैं एवं नियत निर्धारित क्रम से अपनी सुव्यवस्था, कौशल का परिचय देती है। ऐसे व्यक्ति सामान्य मनुष्य की तुलना में कई गुने परिणाम में उत्कृष्ट कार्य कर सकने में सफल होते हैं।

रावण किसी शस्त्र से मर नहीं सकता था क्योंकि उसकी नाभि में अमृत का कुण्ड था। उसे सुखाये बिना यह असुर वध सम्भव नहीं है। यह भेद राम को विभीषण ने बताया। राम ने वह कुण्ड सुखा कर रावण मारा। इससे प्रकट है कि शरीर की स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए नाभि चक्र के माध्यम से कितनी बड़ी सफलता प्राप्त की जा सकती है अध्यात्म रामायण में यह प्रसंग इस प्रकार आता है—

नाभि देशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकार संस्थितम्।
तच्छोषयान अस्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्॥
विभीषण वचः श्रुत्वा रामः शीघ्र पराक्रसः।
पावकास्त्र ण संयोज्य नाभि विव्याध राक्षसः॥

—अध्यात्म रामायण

यह विभीषण की उक्ति है—संकेत है कि रावण की नाभि में कुण्डलाकार स्थित अमृत को अग्निवाण से सुखा दें, तभी उसकी मृत्यु होगी तब राम ने बड़ी फुर्ती से अपने पावकास्त्र से रावण की नाभि को वेध डाला।

यह अमृतत्व पतनोन्मुख करके फुलझड़ी की तरह जलाकर तनिकका विनोद भी खरीदा जा सकता है। उसे मधुमक्खी की तरह संचित करके अपना श्रेय और दूसरों का सुख बढ़ाया जा सकता है। प्रजनन संयत्र के इर्द-गिर्द अनेकानेक क्षमताओं के दिव्य केन्द्र बिखरे हुए हैं। इनमें शरीर शास्त्री कुछ हारमोन ग्रन्थि स्रावों तथा उत्तेजना परक विद्युत प्रवाहों के सम्बन्ध में ही थोड़ी-सी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इतने से भी वेमानते हैं कि मस्तिष्क के बाद अवयवों की दृष्टि से हृदय और स्फुरण की दृष्टि से काम संस्थान की महत्ता है। आत्म-विद्या के अनुसार नाभिचक्र प्राण सत्ता का-साहसिक पराक्रमशीलता का एवं प्रतिभा का केन्द्र माना गया है। इस स्थान की ध्यान साधना करते हुए इस प्राण-शक्ति को निग्रहीत और दिशा नियोजित किया जाता है। फलतः उसके सत्परिणाम भी ओजस्विता की वृद्धि के रूप में समने आते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तनाव की रामबाण चिकित्सा

योग साधना

अपच और कुपोषण के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों का इन दिनों जितना दौर है, उससे कहीं अधिक विपत्ति तनावजन्य रोगों की है। आरोग्य क्षेत्र भी अब क्रमशः दो विभागों में विभक्त होता जाता है। एक पिछड़ा दूसरा विकसित है। पिछड़े लोग जहाँ अभावजन्य कठिनाइयों से सम्बन्धित रोगों के शिकार होते हैं वहाँ विकसित लोग शिक्षा एवं सम्पन्नता का दुरोपयोग करने के कारण मानसिक विक्षोभ से—तनाव से ग्रसित होते चले जाते हैं। नशेबाजी, विलासिता, आपाधापी, शेखीखोरी और अनुदारता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ एक प्रकार से सरल जीवन के साथ विद्रोह है। उच्छृंखलता सो उच्छृंखलता। एक के बाद दूसरी का तारतम्य जुड़ा रहता है और पतनोन्मुखी आदतें न केवल व्यवहार पर वरन् चिन्तन पर भी आच्छादित होती चली जाती हैं। फलस्वरूप शरीर और मन दोनों की शक्तियों का अन्धाधुन्ध अपव्यय होता है और दोनों क्षेत्रों पर छाई रहने वाली उत्तेजना अन्ततः चित्र-विचित्र रोगों के रूप में फूटती है।

यह व्यथा विकसितों को—सम्पन्न एवं शिक्षितों को—अधिक घेरती है। इस तरह पिछड़े लोग अपने ढंग से और प्रगतिशील अपने ढंग से रोगों से ग्रसित होते चले जा रहे हैं। आर्थिक और बौद्धिक आधार पर पनपते हुए वर्ण भेद ने अब रुग्णता के क्षेत्र में भी अपनी विभाजन रेखा खींचनी आरम्भ कर दी है। 'तनाव' समृद्धों के हिस्से में आया है। दुर्भाग्य है उसकी शाखा, प्रशाखाएँ और जटिलताएँ अभावजन्य रोगों से कहीं अधिक हैं। इस प्रकार अपेक्षाकृत अधिक घाटे में तथाकथित समृद्ध लोगों को ही अधिक रहना पड़ रहा है।

जीवन-यापन की विकृत शैली अपना कर ही इन दिनों नये किस्म की ऐसी व्यथाओं से घिरते जा रहे हैं जो न अभावजन्य हैं और न विषाणुओं का आक्रमण। पिछले दिनों वैज्ञानिक, बौद्धिक और आर्थिक प्रगति उतनी नहीं थी जितनी इन दिनों है। इतने पर भी पूर्वज हलकी-फुलकी जिन्दगी जीने के अभ्यस्त थे और चिन्ताओं, भ्रान्तियों से कुत्सांओं-कुण्ठाओं से उतने नहीं घिरे रहते थे, जितने कि आज के तथाकथित 'सभ्य' मनुष्य। विकास की एक सीढ़ी यह भी मानी जा सकती है कि मनुष्य अनुदारता और उच्छृंखलता की दिशा में तेजी से बढ़ता, भागता चला जा रहा है। नई परिस्थितियों में नये किस्म के ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं जिनका प्रस्तुत चिकित्सा ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता और चिकित्सकों को अनुमान के आधार पर इलाज का तीर-तुक्का बिठाना पड़ता है।

इन परिस्थितियों में तनावजन्य रोगों से निपटने के लिए योगाभ्यास की प्रक्रिया अधिक कारगर सिद्ध हो रही है। जो कार्य औषधि उपचार से नहीं बन पड़ रहा था वह इन प्रयोगों से सरलतापूर्वक होते देखा गया है। मानसोपचार की दृष्टि से ध्यान, धारणा और प्रत्याहार की त्रिविधि प्रक्रिया बहुत ही कारगर सिद्ध हो रही है। यदि उस ओर अधिक ध्यान दिया जा सके और इस क्षेत्र में शोध प्रयासों को बढ़ाया जा सके तो ऐसे सूत्र हाथ लगने की पूरी सम्भावना है जो मानसिक तनाव का सामयिक उपचार ही न करे, वरन् उत्पन्न होने से पहले ही रोकथाम करने में कारगर सिद्ध हो सके। मानसिक तनाव को ध्यान द्वारा और शारीरिक तनाव को शवासन, प्राणाकर्षण जैसे कृत्य अभ्यासों से नियन्त्रित किया जा सकता है।

वर्तमान समय में ५० प्रतिशत से अधिक रोगी तनाव की प्रतिक्रिया स्वरूप रोगग्रस्त पाये गये हैं। चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि लगातार सिर-दर्द, चक्कर आना, आँखों में सुर्खी आना, काममें मन न लगना और लकवा आदि जैसे रोगों का आक्रमण हो जाना ये सभी अत्यधिक तनाव के ही दुष्परिणाम हैं। ऐसे लोग प्रायः रोगों की उत्पत्ति के लिए कभी मौसम को, कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आहार को, कभी दूसरों को कभी परिस्थितियों आदि को दोष देते हैं। अधिक तनाव शरीर व मन दोनों के लिए हानिकारक है।

स्नायुविक तनाव-विशेषज्ञ डा० एडमण्ड जैकवसन का कहना है कि हृदय रोग, रक्तचाप की अधिकता, अल्सर कोलाइटिस आदि सामान्यतः दिखाई देने वाले रोग प्रकारान्तर से तनाव के ही कारण उत्पन्न होते हैं। स्नायु दौर्बल्य, अनिद्रा, चिन्ता, खिन्नता आदि अनेक रोग तनाव के फलस्वरूप ही पैदा होते हैं।

न्यूयार्क के एक हृदय-रोग विशेषज्ञ ने बताया है कि दूसरों पर दोषारोपण करने वाले, अत्यधिक भावुक एवं जल्दबाजी करने वाले लोग तनाव के अधिक शिकार होते हैं। मनोवैज्ञानिकों एवं अध्यात्मवेत्ताओं का कहना है कि तनाव की अधिकता मनुष्य की विचारधारा के कारण होती है। निषेधात्मक, निराशावादी संशयात्मक चिन्तन दृष्टिकोण आदमी में तनाव की सृष्टि करते हैं और तनाव से मुक्ति व्यक्ति स्वयं ही पा सकता है।

"लाइफ एक्सटेंशन फाउण्डेशन" नामक संस्था के संचालकों ने पता लगाया है कि व्यक्तियों में निराशा असफलता, हार की भावना, निर्णय करने में द्विधा की स्थिति एवं चिन्ता आदि ही तनाव को जन्म देती है, एक कम्पनी के मेडीकल डायरेक्टर ने एक बार देखा कि उच्च पद आसीन लोग उत्तेजना की स्थिति में हैं। एक दिन कम्पनी के प्रेसीडेन्ट ने आफर उनको थका-थका सा तनावग्रस्त देखा तो मेडीकल डायरेक्टर के सुझावानुसार उन्हें तनाव कम करने के लिए छुट्टियाँ लेकर विश्राम करने हेतु कहा गया। कुछ दिनों बाद जब वे लोग विश्राम करके आये तो परीक्षण करने पर पहले से अधिक शान्त, प्रसन्न पाये गये। खूब मन लगाकर काम करने लगे। कम समय में अधिक काम किया जाने लगा। अधिक जिम्मेदारीपूर्ण कार्य सरलता पूर्वक करने में सक्षम हो गए।

सामान्यतः घरों में तनाव का कारण पति-पत्नी का आपसी तालमेल न बैठ पाना होता है। पत्नियाँ, पतियों को उकसाती उत्तेजित करती हैं और पति-पत्नियों को रसोई आदि के कार्यों के लिए तंग करते हैं। परस्पर सन्तुलन न हो पाने से दोनों तनाव से ग्रसित हो जाते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि माता-पिता के बीच अनबन कलह देखकर बच्चे भी तनाव से आक्रान्त हो जाते हैं फलतः पूरा घर ही नरक बन जाता है। इस नरक से त्राण पाने का रास्ता एक ही है कि परस्पर में सामंजस्य बैठाया जाय। प्रेम-आत्मीयता, सद्भावना, सहयोग आदि से वही परिवार स्वर्गीय आनन्द का उपवन बन सकता है जो जरा से मतभेद एवं नासमझी के कारण नरक बन गया था। रहन-सहन में नियमितता लाने से, परस्पर स्नेह सद्भाव से तनाव की बीमारी से मुक्ति मिल सकती है।

तनाव से मुक्त रहने के लिए सूक्ष्मदर्शियों ने यही कहा है—कि अपनी क्षमता भर अच्छे से अच्छा काम करें। इसमें बाहरी सहायता या मार्गदर्शन कुछ विशेष कारगर सिद्ध नहीं होता। अपने द्वारा उत्पन्न किए तनाव को कोई दूसरा दूर कैसे कर सकता है? तनाव को व्यक्ति स्वयं ही नियन्त्रित एवं दूर कर सकता है। दूसरों का मार्गदर्शन थोड़ा बहुत उपयोगी हो सकता है। स्वाध्याय के द्वारा यह सहज ही पता चल जाता है कि निरर्थक एवं महत्वहीन बातों को अधिक तूल दे दिया गया और अकारण ही तनाव को आमन्त्रित कर लिया गया। वस्तुतः वह झाड़ी के भूत की कल्पना मात्र थी। अपने को तनावग्रस्त न होने देने के लिए दृढ़ निश्चय, लगन एवं सतत् निष्ठापूर्वक सत्कार्यों में नियोजित किए रहना ही सर्वोत्तम उपाय है। सदा सहनशीलता से काम लिया जाय, भविष्य के भय से भयभीत न हुआ जाय, वास्तविकता को दृष्टिगत रखा जाय, काल्पनिक बाधा या आशंका को स्थान न दिया जाय। वर्तमान में सामने आये काम को, पूरी तत्परता से सम्पन्न किया जाय। उसी के सम्बन्ध में सोचा जाय, आशावान रहा जाय। ऐसा करने से स्वयं ही अपने भीतर इस प्रकार की शक्ति का अनुभव होगा जो समस्याओं को सुलझाने में सहायक होगी।

ब्लड प्रेसर (हृदय रोग) दिल का दौरा अब मध्यम वर्ग के लोगों में भी पनप रहा है। इसका मूल कारण है कि लोग अधिक आराम का जीवन जीना चाहते हैं। परिश्रम से बचना चाहते हैं। आमदनी से अधिक खर्च

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बढ़ाकर अधिक से अधिक चिन्ताओं का घेरा मकड़ी के जाल की तरह बुन लेते हैं।

मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि हृदय रोग का कारण अज्ञात भय, चिन्ता जो अर्न्तमन में व्याप्त हो जाती है। नतीजा यह होता है कि मनुष्य की स्वाभाविक खुशी प्रफुल्लता छिन जाती है।

इससे रक्तवाहिनी नसें थक जाती हैं। कभी-कभी फट भी जाती हैं, परिणाम मस्तिष्क में लकवा भी हो जाता है। अधिक दुःख में रक्त का दौरा बढ़ भी जाता है। और शक्कर देने वाली क्लोम ग्रन्थियाँ भी खाली हो जाती हैं और क्लोम रस मिलना बन्द हो जाता है। यह ग्रन्थि प्रसन्नता के अभाव में कार्य करना बन्द कर देती है और क्लोम रस देना भी बन्द कर देती है। क्लोम रस न मिलने से शर्करा स्वतन्त्र हो जाती है, और मूत्र के साथ बहने लगती है। इसी को मधुमेह कहते हैं। मधुमेह रोने, पछताने, शोक करने से भी हो जाता है।

कैन्सर रोग पर हुए अनुसन्धानों से यह प्रकाश में आया है कि जब व्यक्ति का आहार, आचरण एवं व्यवहार दूषित तत्वों से भर जाता है, उसका जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, वह तम्बाकू, शराब आदि विषैली चीजों के चंगुल में अपने को फँसा लेता है तो इस रोग का आरम्भ हो जाता है।

अमेरिका के 'मार्थ वेस्ट रिसर्चफाउण्डेशन' के प्रमुख अनुसन्धान कर्त्ता डा० वेर्नानरिले ने अपने प्रयोगों से पता लगाया है कि मनुष्य के जीवन में भय, तनाव व अत्यधिक चिन्ता इस रोग के प्रमुख कारण हैं।

अमेरिका के ही एक अन्य रिसर्च केन्द्र 'हीलिंग आर्टस् सेन्टर, ने कैन्सर रोग का प्रमुख कारण मन माना है। असफलता, पराजय, निराशा, भय, परेशानी, चिन्ता, असन्तोष, वासना आदि से ग्रसित व्यक्ति बहुत-जल्दी ही इस रोग से आक्रान्त हो जाता है।

सन् १९५० में प्रसिद्ध मनोचिकित्सक श्री लारेन्स ली शान ने कैंसर से पीड़ित व्यक्तियों के सामान्य लक्षणों को बताया है। उन्होंने इसके कारण भावनात्मक असन्तोष निराशा, असफलता, हार, अशान्ति आदि बताये हैं।

कैरोलीन बीड थॉम्स ने १९४६ से १९६४ तक १८ वर्षों में इस सन्दर्भ में किये गये प्रयोगों से निष्कर्ष निकाला है कि जो लोग चिन्ता, क्रोध, भय और तनाव से त्रस्त रहते हैं एवं जीवन में भावनाओं एवं वासनाओं की सन्तुष्टि नहीं कर पाते, अधिकांश वे ही लोग इस रोग से ग्रस्त होते देखे गये हैं।

'टेक्साज हेल्थ साइंस सेन्टर' की यूनीवर्सिटी के डा० जैनी एक्टर वर्ग ने भी कैन्सर का मुख्य कारण मानसिक तनावों को ही बताया है। उन्होंने इस रोग से त्राण पाने के लिए सर्वोत्तम उपाय रोगी की आत्म-शक्ति का सम्वर्द्धन बताया है।

मेक्सिको के डाक्टर अरनेस्टो कन्ट्रैराख ने बताया है कि इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में आहार-विहार सम्बन्धी सुधार किया जाय, बुरी आदतों को ठीक किया जाय, प्रेम, सुख व शान्ति की वृद्धि की जाय तो कैन्सर से मुक्ति पायी जा सकती है। उन्होंने इस चिकित्सा पद्धति को 'लेट्राइल चिकित्सा-प्रणाली' का नाम दिया।

'सभ्य' कहलाने वाले पश्चिमी राष्ट्रों में लोग टाइपर-टेंशन, कैंसर, कारोनरी अथेरोरकलेरोसिस आदि ऐसे रोगों की संख्या में दिन दूनी व रात चौगुनी की दर से हो रही वृद्धि चिन्ता का मुख्य विषय है। मोटापा, मधु-मेह, पेप्टिक अल्सर, कोलाइटिस, आर्थराइटिस दमा आदि ऐसे रोग हैं जिनका मूल कारण विकृत मानसिक स्थिति और उसका स्वरूप ही है। विश्व के सभी बड़े-बड़े चिकित्सा शास्त्री व मनोरोग विशेषज्ञ इस बात को मानने लगे हैं कि ७५ प्रतिशत रोगों का मूल कारण उद्वेगजन्य मनःस्थिति ही है।

'इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंस' वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा० के० एन० उडुपा ने उद्वेगजन्य रोगों के कारणों व उनके निदान पर गहन अध्ययन के पश्चात् इस प्रकार के रोगों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है।

शारीरिक अवस्था—जब किसी व्यक्ति को मनो-रोग होता है तो उस दशा में उसके किसी अंग विशेष पर विशेष प्रकार की क्रियाशीलता देखी जा सकती है इस दशा के लिए उसके वातावरण एवं उसकी पैतृक रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से विरासत में प्राप्त गुण जिम्मेदार होते हैं किसी में अक्ल की वृद्धि तो किसी के हृदय की धड़कन में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है। इस दशा का निर्धारण रक्त में कासकालायाइन्स एड्रेनलिन और नार एड्रेनलिन की वृद्धि की जाँचकर किया जा सकता है।

(२) मनोदशा—इस स्थिति में व्यक्ति के मन में एक तीव्र आघात होता है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति के स्वभाव में उद्विग्नता व चिड़चिड़ापन आ जाता है। किसी भी प्रकार की बात उसके लिए उद्विग्नता का कारण बन जाती है। बार-बार नींद का टूटना व शिहरन व कंपकपी आदि प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस स्थिति की जानकारी रक्त में न्यूरोट्रांसमीटर एसेटिलकोलिन के स्तर की नापकर लगायी जा सकती है।

(३) शारीरिक अंगों की दशा—इस स्थिति में आते-आते रोगी के शारीरिक व मानसिक लक्षणों की सक्रियता तो कम होती जाती है किन्तु धीरे २ सम्बन्धित अंगों में स्थायी रूप से उसका प्रभाव पड़ने लगता है जैसे दाह, कमजोरी आदि के साथ-साथ पेप्टिक अल्सर, कारोनरी इन्सफिसिशेनर्स, ब्राकियल, अस्थमा आदि रोगों के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगते हैं।

डा० उडुपा ने इस सम्बन्ध में गहन अध्ययन के बाद निष्कर्ष निकाला है कि आसन प्राणायाम के साथ-साथ ध्यान-धारणा व शिथिलीकरण के अभ्यास विशेष लाभकारी हुए हैं। जप और ध्यान का मनोरोगों को दूर करने में विशेष महत्व सिद्ध करते हुए पाश्चात्य वैज्ञानिक बुजत्ती और राइडरर ने अपने संयुक्त शोध प्रयासों से स्नायु प्रणाली के स्राव व न्यूरोट्रांसमीटर की जाँच के बाद यह सिद्ध कर दिया कि दो वर्ष से जप कर रहे ११ व्यक्तियों में मानसिक तनाव व तनावजनित रोग लगभग न्यून हो गए, जबकि १३ बिना जप कर रहे व्यक्तियों पर जब प्रयोग कर के देखा गया तो पाया कि उनमें मानसिक तनाव व उससे उत्पन्न होने वाले रोगों में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थीं। 卐

—०—

युग साहित्य की प्रथम किस्त तैयार

शिक्षितों को सुसंस्कृत बनाने के हेतु हर दिन, घर बैठे, नियमित रूप से, बिना मूल्य युग साहित्य पढ़ाने की व्यापक योजना बनी है। हर भाषा में हर वर्ष ३६० की संख्या में पच्चीस पैसा मूल्य वाली अत्यन्त सस्ती, सुन्दर एवं सारगर्भिता पुस्तिकाएँ इस योजना के अन्तर्गत छपती हैं। इन्हें अपने सम्पर्क क्षेत्रों में सभी प्रज्ञा परिजन पढ़ाने के लिए अविलम्ब समयदान अंशदान लगावेंगे, इस युग सन्धि के प्रभात पर्व पर ऐसी आशा अपेक्षा की गई है।

इस योजना को सर्वप्रथम हिन्दी भाषा से आरम्भ किया गया है। उसकी १२० पुस्तकों की प्रथम किस्त छपकर तैयार है। मूल्य ३०) है। राशि पेशगी युग निर्माण योजना मथुरा के पते पर भेजने से पोस्ट, पार्सल का खर्चा मिशन की ओर से लगा दिया जायगा। दूसरी किस्त अगस्त में, तीसरी दिसम्बर में छपेगी। अन्य भाषाओं के प्रकाशन की योजना भी जल्दी ही क्रियान्वित होने जा रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनों से अपनी बात

चिर पुरातन में मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक सभी चिन्तन एवं व्यवहार एक ही निर्धारण के अन्तर्गत समाहित होते थे। उस निर्धारण का नाम था—धर्म। उन दिनों अनुशासन और निर्धारण एक ही तन्त्र के अन्तर्गत होता था। पुरोहित और शासक या तो एक ही होते थे या दोनों मिल-जुलकर व्यवस्था बनाने और चलाने की सयुक्त जिम्मेदारी उठाते थे। उन दिनों स्वास्थ्य, शिक्षा, उपार्जन, परम्परा, सुरक्षा जैसे विभाग पृथक्-पृथक् नहीं थे—एक ही धर्म व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज की समस्त आवश्यकताओं और गतिविधियों का संचालन नियमन एक ही तन्त्र के अन्तर्गत भली प्रकार होता रहता था। जीवन-क्रम सीधा-सादा था। आज जैसे विस्तृत और बिखरा कहाँ था, इसलिए एक निर्धारण के अन्तर्गत सब रखना पड़ता है। दोनों के सहयोग की तो गुंजायश है; पर उनका समन्वय तभी हो सकता है जब प्राचीन काल का सतयुग फिर यथावत् वापिस लौट आये।

शासन में कार्यपालिका और न्यायपालिका के सीमा क्षेत्रों का विभाजन हो गया है। इतना ही नहीं, कई-कई मिनिस्ट्री बनती हैं और प्रान्तों पंचायतों की अपनी-अपनी सीमाएँ निर्धारित होती हैं। यही बात धर्म के सम्बन्ध में भी है। उसके दार्शनिक पक्ष को अध्यात्म और व्यवहार पक्ष को चरित्र कहा जाता है। अति पुरातन में यह विभाजन नहीं थे। तब ब्रह्मविद्या का तत्व चिन्तन और साधना उपक्रम के योग-तप भी आज की तरह विभाजित नहीं थे। इस विभाजन में विग्रह ढूँढ़ना व्यर्थ है। वस्तुतः क्षेत्र विस्तार होने पर खेत में क्यारियाँ बनाने की तरह

गंगा अवतरण के त्रिवेणी संगम में परिणित होने का पुण्य पर्व

कुछ चलते रहने में कोई कठिनाई भी नहीं होती थी।

आज की स्थिति भिन्न है। हर क्षेत्र का विस्तार हुआ है, फलतः सोचने और करने के प्रसंग भी क्रमशः बढ़ते चले गये हैं। अब धर्म और शासन को एक नहीं दो रूपों में विभाजित होकर रहना पड़ रहा है। दोनों मिल-जुलकर काम करें, इतना ही सम्भव है। उन्हें मिला-जुलाकर एक नहीं किया जा सकता। सत्य और अहिंसा के आधार पर दुष्टता से सुरक्षा का समाधान इन दिनों अति कठिन है। प्राचीन काल की परिस्थितियों में ही वे साथ-साथ निभ सकी होंगी। अध्यात्म और विज्ञान के क्षेत्र भी अब पृथक् हो गये हैं। अध्यात्म विचारणाओं और भावनाओं की समस्याएँ सुलझाता है तो विज्ञान को शक्ति और सुविधा के क्षेत्र में अपने प्रयासों को सीमित

व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से इस प्रकार के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता अनिवार्य होकर सामने आ खड़ी होती है। नये परिवार का आरम्भ करते समय पति-पत्नी दो ही होते हैं और छोटे बच्चे भी साथ-साथ लिपटे रहते हैं। पर जब कुटुम्ब बढ़ता है, बेटे-पोते वयस्क होते हैं, बन्धुओं और जामाताओं की अच्छी खासी भीड़ जमने लगती है, तो विशालकाय परिवारों का संयुक्त रहना सुविधा का नहीं, अव्यवस्था का कारण बनता है। तब उस समुदाय को छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित होना पड़ता है। इतने पर भी उनके बीच स्नेह, सौमनस्य बना रहता है। विस्तार के साथ विभाजन की नीति भी अपनानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। शरीर के हर अवयव का काम पृथक् है, सभी की अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षमता और सीमा है। इतने पर भी वे एक अनुशासन के अन्तर्गत मिल-जुलकर काम करते हैं। ऐसी दशा में वे विग्रह खड़े नहीं होते जिन्हें आपा-धापी उत्पन्न करती है। विभाजन और समन्वय से सुविधा ही रहती है कठिनाई बढ़ने की समस्या वहाँ आती है जहाँ संकीर्ण स्वार्थपरता पनपती है और स्वेच्छाचारिता को राह मिलती है।

लोकमानस को परिष्कृत करने के उद्देश्य को लेकर आज से ४५ वर्ष पूर्व छोटा-सा शुभारम्भ 'अखण्ड-ज्योति' के नाम से हुआ था। कार्य विस्तार के साथ-साथ उसे गायत्री तपोभूमि, युग-निर्माण योजना, शान्ति-कुन्ज, ब्रह्म-वर्चस्, गायत्री-नगर के रूप में विकसित करना पड़ा। इतने से भी काम नहीं चला तो अब २४०० प्रज्ञापीठों के सहारे उसे व्यापक बनाया जा रहा है। यह संख्या सिकुड़ने वाली नहीं है, क्रमशः विस्तार ही होता चलेगा। यह विग्रह या विभाजन नहीं विस्तृतीकरण की स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसे देखकर असमंजस व्यक्त करने का कोई कारण नहीं। वैभव-वृद्धि की तरह इसे सराहा ही जाना चाहिए।

यहाँ विस्तार और विभाजन की चर्चा इस प्रसंग में की जा रही है कि अब से ४५ वर्ष पूर्व 'अखण्ड-ज्योति' पत्रिका के माध्यम से जो दीपक जलाया गया था वह चिरकाल तक सामयिक आवश्यकता के अनुरूप अपना कार्य यथावत् सम्पन्न करता रहा। इतने पर भी नये-नये कमरे बन जाने पर एक दीपक की गरिमा को शत-शत नमन करते हुए भी नये दीपक जलाने की आवश्यकता पड़ेगी। छोटे बच्चे को भोजन, वस्त्र और खिलौने देकर भली-भाँति सन्तुष्ट रखा जा सकता है, पर जब वह बढ़ता है तो शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज सम्पर्क के कतिपय नये साधनों की माँग करता है। समय की माँग और परिजनों की मनःस्थिति दोनों का ही सामयिक एवं सराहनीय विकास हुआ है, तदनुरूप नये-नये उपकरण जुटाने और नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ति का ताना-बाना बनाने की आवश्यकता पड़ रही है। किसी दिन उत्पन्न हुए बालक को गोदी में खिलाने भर से काम चल जाता था, पर अब तो उसके विवाह की—अलग कमरा बनाने की आवश्यकता पड़ रही है। इस विभाजन में असमंजस जैसी कोई बात है नहीं। यह प्रसन्नता का ही अवसर है।

अब से ४५ वर्ष पूर्व तत्कालीन आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुरूप अकेली 'अखण्ड-ज्योति से ही भली प्रकार काम चल जाता था—चलता भी रहा है। पर अब बात वैसी नहीं है। मिशन अब बचपन से आगे निकल कर प्रौढ़ता की परिधि में जा पहुँचा है और उसे परामर्श से लेकर साधनों तक की इतनी अधिक आवश्यकता पड़ती है जितनी कि बचपन वाले दिनों में कभी सोची भी नहीं गई थी। अस्तु मिशन का प्रतिपादन तन्त्र अब तीन हिस्सों में विभाजित कर दिया गया है। अनादि काल में अकेली गंगा ही स्वर्ग से धरती पर उतरी थी। पीछे यमुना और सरस्वती भी आईं और इसी प्रधान धारा में घुल जाने की नीति अपनाकर त्रिवेणी संगम की तरह प्रख्यात हुईं। अकेला गंगा स्नान भी यों अभी भी अपनी एकाकी गरिमा बनाये हुए है, पर त्रिवेणी संगम का महत्व तो और भी अधिक है।

इन दिनों मिशन की तीन पत्रिकाएँ निकल रही हैं। इन तीनों को अपने-अपने क्षेत्र का उत्तरदायित्व सम्भालने में निरत रहते देखा जा सकता है। 'अखण्ड-ज्योति के अतिरिक्त अब दूसरी "युग निर्माण योजना मासिक" और तीसरी "प्रज्ञा अभियान मासिक" भी प्रकाशित होने लगी है। इन तीनों के तीन कार्य क्षेत्र विभाजित कर दिये गये हैं—(१) अखण्ड-ज्योति मनुष्य में देवत्व के उदय का, विश्व मानव के भावनात्मक परिष्कार का, आत्मोत्कर्ष का ताना-बाना बुनती और तदनुरूप प्रतिपादन प्रस्तुत करती रहेगी। विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करने की यज्ञोपैथी जैसे अभिनव आविष्कारों से जन-साधारण को लाभान्वित करने की जिम्मेदारी इसी की है। ब्रह्म वर्चस् के अनुसन्धान और पर्यवेक्षण का निष्कर्ष युग मनीषा तक पहुँचाने का भारी भरकम काम उसी का है। विश्वास किया जाना चाहिए कि अन्य पक्षों का भार दूसरी सहेलियों, प्रौढ़ पुत्रियों द्वारा सम्भाल लिये जाने के कारण वह अपने सीमित प्रयोजन को असीम तत्परता के साथ और भी अधिक तरह सम्पन्न कर सकेगी। दूसरी पत्रिका "युग निर्माण योजना" को धरती पर स्वर्ग का अवतरण की दिशा धारा, कार्य पद्धति एवं सम्भावना को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्व साधारण के सम्मुख प्रस्तुत करने का काम सौंपा गया है। युग भौतिकता प्रधान है। हर समाधान के लिए भौतिक उपाय उपचारों की, साधनों-निर्धारणों की, बात सोची जाती है। जितनी निर्भरता बढ़ रही है—उसमें अत्युत्साह और अतिवाद है फिर भी उस क्षेत्र को न तो महत्वहीन समझा जा सकता है और न उपेक्षित रखा जा सकता है। भौतिक प्रगति तो हो, पर उसका उपयोग विलास विग्रह के लिए न होकर सतयुगी स्वर्गीय परिस्थितियों के सम्वर्धन में नियोजित होने लगे तो पुरुषार्थ एवं कौशल को कृत-कृत्य होने का अवसर मिल सकता है। यह सब किस तरह सम्पन्न हो इसकी दूरदर्शिता और सदाशयता से भरा-पूरा निर्धारण युग निर्माण पत्रिका के पृष्ठों पर मिला करेगा।

इन दिनों प्रगति का सारा श्रेय या दोष शासन के कन्धों पर लद जाता है। जन-मानस अपने को असहाय जैसी स्थिति में अनुभव करता है। जो होना चाहिए उसके लिए सरकार का मुँह ताकता है। इस दयनीय स्थिति को प्रकारान्तर से भाव क्षेत्र की पराधीनता और व्यक्तित्व की प्रखरता के सम्मुख प्रस्तुत चुनौती कहा जा सकता है। व्यक्ति अपने आप में एक प्रखरता सम्पन्न इकाई है। उसकी तुलना भौतिक सामर्थ्य से भरे-पूरे परमाणु से की जा सकती है। व्यक्ति की निजी क्षमता का सम्वर्धन और सुनियोजन यदि सम्भव हो सके तो वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रगति के नये स्रोत खुल सकते हैं और शासन पर समस्याओं का लदा हुआ बोझ बहुत कुछ हल्का हो सकता है।

इसी प्रकार व्यक्ति और शासन के मध्य एक और तन्त्र विकसित होने की पूरी-पूरी गुंजाइश है—वह है सहकारी सेवा संगठनों का युग समस्याओं से निपटने के लिए महा प्रयास। सरकार अफसरों के सहारे, टैक्सों के सहारे जो सामर्थ्य उत्पन्न करती है उसीसे मिलती-जुलती क्षमता जन भावना में—सदाशयता की पक्षधर सद्भावना उभारने और स्वेच्छा अनुदान से सृजनात्मक प्रयोजनों को अनुगामी बनाने का कार्य भली प्रकार सम्पन्न हो सकता है। युग निर्माण पत्रिका इस अविज्ञात अथवा उपेक्षित क्षेत्र को अपने हाथ में लेगी और सत्प्रवृति सम्वर्धन के भौतिक प्रयत्नों का व्यावहारिक प्रतिपादन प्रस्तुत करेगी।

पंचवर्षीय योजनाएँ, शासन तन्त्र और घोषित बजट के आधार पर बनती हैं। अब ऐसी नई पंचवर्षीय या एक वर्षीय योजनाएँ बननी और क्रियान्वित होनी चाहिए जो वैभव एवं पराक्रम की प्रस्तुत क्षमता को न केवल बढ़ाने का वरन् उसके सदुपयोग का ताना-बाना भी बुनती चले।

कहना न होगा कि "युग निर्माण योजना" के पृष्ठों पर प्रतिपादन अगले दिनों समय की इसी माँग को पूरा करने में अद्भुत एवं अभूतपूर्ण भूमिका सम्पन्न करेगा। उसके प्रस्तुतीकरण इतने पैने—इतने सही होंगे कि समाजवाद, प्रजातन्त्र, नागरिक-शास्त्र, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि की तरह सर्व साधारण के गले उतरेंगे। इतना ही नहीं वे इसलिए भी क्रियान्वित होंगे कि उज्ज्वल भविष्य का और कोई विकल्प है नहीं। 'अखण्ड-ज्योति' एवं 'युग निर्माण योजना' के सम्बन्ध में फिर एक बार इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि मिशन के दोनों संकल्पों को पूरा करने के लिए चिन्तन एवं व्यवहार का समग्र ढाँचा खड़ा करें और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए प्रतिभाओं को उभारने तथा साधन जुटाने का उत्तरदायित्व वहन करें। दोनों संकल्प सर्वविदित हैं—(१)"मनुष्य में देवत्व का उदय" अर्थात् व्यक्तित्वों का आदर्शवादी निर्माण। (२) "धरती पर स्वर्ग का अवतरण" अर्थात् क्षमताओं और सम्पदाओं का मात्र सत्प्रयोजनों के लिए नियोजन।

मनीषा ने अभी तक इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक सोचा नहीं तो कोई मार्ग भी नहीं निकला। अब जबकि इस उपेक्षित पक्ष को उभारने, निखारने की बात हाथ में ली गई है तो इस अन्वेषण आविष्कारों के युग में उसका मार्ग भी निकल कर ही रहेगा। 'अध्यात्म' अर्थात् 'देव' 'विज्ञान' अर्थात् 'दैत्य'। दोनों के सहयोग से कभी समुद्र मंथन हुआ था और चौदह रत्न निकले थे। अखण्ड-ज्योति और युग निर्माण को दोनों पक्षों का नेतृत्व करने की बात कही गई है। वे बृहस्पति और शुक्राचार्य भूमिका को सृजनात्मक प्रयोजन के लिए नियोजित करेंगे तो फिर नया समुद्र मंथन होगा और व्यक्ति की श्रद्धा-सम्वेदना से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकर समाज की प्रथा परम्परा के हर क्षेत्र में सतयुगी सम्भावनाओं का दर्शन होने में देर न लगेगी।

तीसरी पत्रिका है—'प्रज्ञा अभियान'। उसका विषय है इस पुण्य प्रयोजन में निरत युग-शिल्पी समुदाय का मार्ग दर्शन। महाकाल की प्रबल प्रेरणाएँ ही कही जानी चाहिए कि नव-सृजन के लिए एक भाव-भरा सेवा सम्प्रदाय उबले दूध पर अनायास ही मलाई उभर पड़ने की तरह कार्य क्षेत्र में आ खड़ा हुआ है। अगले दिनों युग-निर्माण की व्यापक, समग्र एवं सफल भूमिका निभाने के लिए अनेकानेक प्रतिभाओं को कार्यरत होना पड़ेगा। किन्तु आरम्भ में अग्रगामी तो सदा से थोड़े ही व्यक्ति सामने आये हैं। मात्र निकृष्टता को ही समर्थन नहीं मिलता। प्रखरता सम्पन्न सदाशयता भी अपने अनुयायी और सहयोगी उपार्जित करने में सफल होती है। बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्त्तन और गाँधी का स्वतन्त्रता आन्दोलन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। प्रज्ञा अभियान की भावी भूमिका को भी इसी दृष्टि से देखा जा सकता है और इसी श्रेणी में गिना जा सकता है।

एक लाख के लगभग युग शिल्पियों और चौबीस सौ के करीब प्रज्ञा संस्थानों के माध्यम से जिस नव-निर्माण की प्रक्रिया को इन दिनों सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में जुटाया गया है वह एक बहुत बड़ा काम है। सामयिक परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के उतार-चढ़ावों का ध्यान रखते हुए इस आन्दोलन का संचालन एक अभूतपूर्व एवं अनभ्यस्त युद्ध कौशल है। इसकी रण नीति का निर्धारण ही नहीं, उसका सुनियोजित ढंग से क्रियान्वित होते रहना भी एक बड़ा काम है। इस सूत्र संचालन का कार्य भार प्रज्ञा पत्रिका के हाथों सुपुर्द किया जा रहा है। यह सरंजाम न जुटाया जाता तो अपने युग के इस अभूतपूर्व सृजन अभियान से भटकाव का निहित स्वार्थों द्वारा कब्जा जमा लेने का खतरा कभी भी प्रत्यक्ष हो सकता है और सारे किये कराये पर पानी फिर सकता है।

अखण्ड-ज्योति एवं युग निर्माण की तरह ही तीसरी पत्रिका प्रज्ञा अभियान की भी अपनी महत्ता है। इन तीनों के मिलने से सरस्वती, लक्ष्मी, काली जैसा त्रिवेणी संगम बनता है और उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का सुनिश्चित द्वार खुलता है।

युग सन्धि के द्वितीय वर्ष में सन् ८१ में तीनों पत्रिकाएँ नये निर्माण का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए नये साहस के साथ खड़ी हो रही हैं। तीनों को मिला कर ही उस युग शक्ति का प्रकटीकरण होता है जिसे आरम्भ में गायत्री कहा गया था और आज उसे ऋतम्भरा प्रज्ञा के नाम से विश्व-व्यापी एवं विवाद रहित बनाया जा रहा है।

अखण्ड-ज्योति में 'अपनों से अपनी बात' स्तम्भ छपता था। अब उसका समय की आवश्यकता के अनुरूप विस्तार किया गया है और 'प्रज्ञा अभियान' के नाम से स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित करते रहने का निश्चय किया गया है। उसके जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल १९८१ के अंकों में युग सन्धि के द्वितीय वर्ष में क्रियान्वित होने वाले 'सप्त सूत्री कार्यक्रम' की प्रधान रूप से चर्चा है। किन्तु मई से उसमें वह सामग्री चल पड़ेगी जिसे प्रज्ञा परिजनों के आत्मनिर्माण, परिवार-निर्माण, समाज-निर्माण के निमित्त किये गये मार्ग दर्शन की तरह समझा जा सकता है।

प्रज्ञा अभियान पत्रिका का वार्षिक चन्दा छै रुपया और युग निर्माण पत्रिका का आठ रुपया है। दोनों ही हिन्दी मासिक हैं और युग निर्माण योजना मथुरा के तत्वावधान में प्रकाशित होती हैं। अखण्ड-ज्योति परिजनों से अनुरोध है कि वे जिस प्रकार अखण्ड-ज्योति के साथ आत्मीयता जोड़े रहे हैं, उसी प्रकार इन दिनों नये प्रकाशनों को भी अपनाने का प्रयत्न करें। यह चौदह रुपये की राशि और भी खर्च की जानी चाहिए। आयुष्य बढ़ने से—वैभव एवं उत्तरदायित्व के विस्तार से कुछ नया भार तो बढ़ता ही है। यह चौदह रुपये के भार विस्तार को समय की आवश्यकता समझें और जहाँ-तहाँ से कटौती कर उसको वहन करने का साहस करें।

जहाँ स्वयं तीनों पत्रिकाएँ मँगा सकना सम्भव न हो, वहाँ यह किया जाय कि अपने अन्य मित्रों को इनका सदस्य बना दिया जाय और परस्पर मिल-जुलकर तीनों को पढ़ने पढ़ाने का उपक्रम बनाया जाय। तीनों परस्पर पूरक होने के कारण उन सभी को पढ़ना इन दिनों एक प्रकार से नितान्त आवश्यक है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि कोई प्रज्ञा परिजन एक पत्रिका को पढ़ कर सन्तोष न करें, वरन् अन्न, जल और वायु की तरह इन्हें अविच्छिन्न अंग मानने की तत्परता बरतें। 卐

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म का वैज्ञानिक प्रतिपादन साहित्य

प्रस्तुत बुद्धिवादी युग में तर्क, तथ्य, प्रत्यक्ष, प्रमाण एवं विज्ञान को प्रामाणिकता मिली है और शास्त्र, श्रद्धा एवं आप्त वचनों को अमान्य किया गया है। इस मनःस्थिति में पनपने वाले नास्तिकतावाद एवं स्वेच्छाचार को निरस्त करने के लिए युगद्रष्टा गुरुदेव की लेखनी से अभिनव युग साहित्य सृजा गया है। प्रत्येक पुस्तक विचारशील वर्ग के लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।

(१) विवाद से परे ईश्वर का अस्तित्व
(२) ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ?
(३) दृश्य जगत के अदृश्य संचालन सूत्र
(४) चेतना की प्रचण्ड-क्षमता एक दर्शन
(५) असीम पर निर्भर ससीम जीवन
(६) मनुष्य चलता-फिरता पेड़ नहीं है
(७) पाँच प्राण—पाँच देव
(८) दिव्य-शक्तियों का उद्भव प्राण शक्ति से
(९) मानवीय क्षमता— असीम अप्रत्याशित
(१०) अणु में विभु—गागर में सागर
(११) आत्मा न नर है, न नारी
(१२) मानवीय मस्तिष्क विलक्षण कम्प्यूटर
(१३) अतीन्द्रिय क्षमताओं की पृष्ठभूमि
(१४) जड़ के भीतर विवेकवान चेतना
(१५) शरीर की अद्भुत क्षमता और विलक्षणताएं
(१६) मस्तिष्क प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष
(१७) क्या धर्म अफीम की गोली है ?
(१८) धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं पूरक
(१९) विज्ञान को शैतान बनने से रोकें
(२०) पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य
(२१) स्वर्ग नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया
(२२) तात्विक दृष्टि से बंधन मुक्ति
(२३) मरें तो सही पर बुद्धिमत्ता के साथ
(२४) भूत कैसे होते हैं ? क्या करते हैं ?
(२५) पितरों को श्रद्धा दें—वे शक्ति देंगे
(२६) सपने झूठे भी सच्चे भी
(२७) शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
(२८) आध्यात्मिक काम विज्ञान
(२९) जीव जन्तु बोलते भी हैं—सोचते भी हैं,
(३०) संसार चक्र की गति प्रगति
(३१) असामान्य एवं विलक्षण, किन्तु सम्भव और सुलभ
(३२) मनुष्य गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु
(३३) दृश्य-जगत की अदृश्य पहेलियाँ
(३४) हम सब एक-दूसरे पर निर्भर
(३५) चेतना का सहज स्वभाव-स्नेह, सहयोग
(३६) सहृदयता आत्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य
(३७) बच्चे बढ़ाकर अपने पैरों कुल्हाड़ी न मारें
(३८) युग शक्ति गायत्री का अभिनव अवतरण
(३९) ब्रह्मवर्चस् की ध्यान-धारणा
(४०) कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसिद्धि
(४१) सर्वोपयोगी गायत्री साधना
(४२) गायत्री के पाँच मुख पाँच दिव्य कोश

प्रत्येक की छपाई-सफाई सुन्दर ! कवर आकर्षक। पृष्ठ संख्या ११२, मूल्य तीन रुपया। डाक व्यय अलग।

पूरे सेट का मूल्य ११०) डाक व्यय मुफ्त।

अखण्ड-ज्योति प्रकाशन, मथुरा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रजिस्टर्ड नं० एम० टी० आर० ५६
रजि० नं० आर. एन. २१६२५२

अखण्ड-ज्योति मासिक

"अकथ-कथा"

लिखी है दास्तां दिल में, सुनाई जा नहीं सकती।
दर्द की दास्तां, बेलोच गाई जा नहीं सकती॥

बहुत चाहा सुनाऊँ दास्ताने-दर्द मजलिस में।
मगर दिल पड़ गया है बेतहाशा आज मुश्किल में।
जबां पर दास्ताने-दर्द लाई जा नहीं सकती॥

दिया है जिसने जानो-जिस्म हँसकर इस जमाने को।
पिया गम जिन्दगी भर ही, जमाने को हँसाने को।
कहानी त्याग की उसके, झुठाई जा नहीं सकती॥

कलेजा चीर कर जिसने पिलाया दूध बचपन को।
सुखों से वास्ता छोड़ा, सहा हर एक अड़चन को।
उठाई वह मुसीबत, जो उठाई जा नहीं सकती॥

दिया मृदु-प्यार का आश्रय, थकी हारी जवानी को।
बनाया जीव का नगमा, हारती हर कहानी को।
कहानी त्याग की उसके, झुठाई जा नहीं सकती॥

हुआ पुरुषार्थ बूढ़ा तो बनी उसका सहारा वह।
न कर पाई बुरे दिन में बुढ़ापे से किनारा वह।
जमाने में मिसाल उसकी, बताई जा नहीं सकती॥

वही ममता मयी नारी, अनूठे प्रेम की प्रतिमा।
दहकते नरक को जन्नत बनाने की सहज गरिमा।
उन्हीं एहसान की दौलत चुराई जा नहीं सकती॥

उसी के साथ हमने जबकी इन्ताह कर दी है।
उसी की जिन्दगी हमने बनाकर नरक धर दी है।
कि यूं नारित्व की गरिमा भुलाई जा नहीं सकती॥

हमें उपकार का बदला नहीं ऐसे चुकाना है।
हमें नारित्व की गरिमा, सगाहत कर बढ़ाना है।
सुधा को धार तो विषको पिलाई जा नहीं सकती॥

अगर हम ही नहीं मातृत्व का सम्मान कर पाये।
अगर हम ही नहीं मातृत्व का उत्थान कर पाये।
बिना उसके मनुजता, फिर उठाई जा नहीं सकती॥

—मंगल विजय

सम्पादक—भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक—मृत्युञ्जय शर्मा अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा जन-जागरण प्रेस मथुरा में मुद्रित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi